

Chapter सोलह

कृष्ण द्वारा कालिय नाग को प्रताड़ना

इस अध्याय में भगवान् कृष्ण द्वारा यमुना नदी के सन्निकट स्थित सरोवर के भीतर कालिय नाग-दमन की लीला तथा नागपत्नियों द्वारा स्तुति किये जाने पर कालिय पर कृपा किये जाने का वर्णन हुआ है।

कालिय के विष से दूषित यमुना जल को फिर से शुद्ध करने के लिए भगवान् कृष्ण नदी तट पर एक कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये और वहाँ से जल में कूद पड़े। तत्पश्चात् वे निर्भीक होकर जल के भीतर मदमस्त हाथी की तरह क्रीड़ा करने लगे। कालिय को कृष्ण का इस तरह उसके निजी वास में घुसना सहन नहीं हो पाया अतः उसने भगवान् के पास जाकर छाती में डस लिया। जब कृष्ण के मित्रों ने यह देखा तो वे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उसी समय व्रजभूमि में तरह तरह के अपशकुन प्रकट होने लगे—पृथ्वी काँपने लगी, उल्कापात होने लगा और प्राणियों के वाम अंग फड़कने लगे।

वृन्दावनवासी विचार करने लगे, “आज कृष्णजी बलराम के बिना ही जंगल गये हैं अतः न जाने उन पर कौन विपत्ति आ पड़ी हो।” ऐसा सोचते हुए वे कृष्ण के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए यमुना के तट पर पहुँचे। उन्होंने यमुना नदी के सन्निकट सरोवर के जल के भीतर अपने प्राणप्रिय कृष्ण को कालिय नाग की कुण्डली में लिपटा हुआ देखा। वृन्दावनवासियों को तीनों लोक शून्य से दिखने लगे और उन सबों ने जल में प्रवेश करने की तैयारी कर ली। किन्तु भगवान् बलराम ने उन सबों को रोका क्योंकि उन्हें कृष्ण की शक्ति का पूरा पूरा पता था।

तब अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को इस तरह विक्षुब्ध देखकर कृष्ण ने अपने शरीर का अत्यधिक विस्तार कर लिया जिससे सर्प को अपनी कुण्डली को ढीला करना पड़ा और कृष्ण को छोड़ना पड़ा। इसके बाद वे उस सर्प के फनों पर नाचने लगे। अपने इस अद्भुत प्रचण्ड नृत्य से श्रीकृष्ण ने सर्प के

एक हजार फनों को कुचल डाला जिससे उसका शरीर शिथिल पड़ गया। मुख से रक्त वमन करता हुआ कालिय अंत में समझ गया कि कृष्ण आदिपुरुष नारायण हैं, जो चराचर के स्वामी हैं अतः उसने उनकी शरण ग्रहण की।

नागपत्नियों ने देखा कि कालिय अत्यधिक थक गया है, अतः उन्होंने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर अपना शीश झुकाया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पति को मुक्त कराने की आशा से विविध स्तुतियाँ कीं, “अच्छा ही हुआ कि आपने हमारे अत्याचारी पति की यह दशा बना दी है। आपके क्रोध से उसे महान् लाभ हुआ है। कालिय ने अपने पूर्व-जन्मों में कितना पुण्य कमाया था! आज उसने अपने सिर पर भगवान् के चरणकमलों की वह धूल धारण की है, जिसे पाना ब्रह्माण्ड की जननी, माता लक्ष्मी के लिए भी दुर्लभ है। अब कृपा करके कालिय द्वारा अज्ञानवश किये गये अपराध को क्षमा कर दें और उसे जीवित रहने दें।”

नागपत्नियों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर कृष्ण ने कालिय को छोड़ दिया। उसे धीरे धीरे चेतना हो आई और उसने अपनी महान् शक्तियों को पुनः पा लिया। तब कालिय ने संतप्त स्वर से अपने द्वारा किये गये अपराध को स्वीकार किया और कृष्ण की कई प्रकार से स्तुति की। उसने कहा कि वह उनका आदेश पालने के लिए तैयार है। कृष्ण ने उससे कहा कि वह सपरिवार यमुना के सरोवर (कुंड) को छोड़ दे और रमणक द्वीप चला जाये।

श्रीशुक उवाच

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; विलोक्य—देखकर; दूषिताम्—प्रदूषित; कृष्णाम्—यमुना नदी को; कृष्णः—भगवान् श्रीकृष्ण ने; कृष्ण-अहिना—काले सर्प (कालिय) द्वारा; विभुः—सर्वशक्तिमान; तस्याः—नदी की; विशुद्धिम्—शुद्धि की; अन्विच्छन्—इच्छा करते हुए; सर्पम्—सर्प को; तम्—उस; उदवासयत्—भगा दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् श्रीकृष्ण ने यह देखकर कि काले सर्प कालिय ने यमुना नदी को दूषित कर रखा है, उसे शुद्ध करने की इच्छा की और इस तरह उन्होंने कालिय को उसमें से निकाल भगाया।

श्रीराजोवाच

कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् ।

स वै बहुयुगावासं यथासीद्विप्र कथ्यताम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; कथम्—कैसे; अन्तः-जले—जल के भीतर; अगाधे—अथाह; न्यगृह्णात्—दमन किया; भगवान्—भगवान् ने; अहिम्—सर्प को; सः—वह, कालिय; वै—निस्सन्देह; बहु-युग—अनेक युगों से; आवासम्—निवास स्थान बनाये हुए; यथा—किस तरह; आसीत्—हो गया; विप्र—हे विद्वान् ब्राह्मण; कथ्यताम्—कृपा करके बतलायें।

राजा परीक्षित ने पूछा: हे विद्वान् मुनि, कृपा करके यह बतलायें कि किस तरह भगवान् ने यमुना के अगाध जल में कालिय नाग को प्रताड़ित किया और वह कालिय किस तरह अनेक युगों से वहाँ पर रह रहा था?

ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूमः स्वच्छन्दवर्तिनः ।

गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; भगवतः—भगवान् का; तस्य—उस; भूमः—अनन्त; स्व-छन्द-वर्तिनः—अपनी इच्छा से कर्म करनेवाले; गोपाल—ग्वालबाल के रूप में; उदार—उदार; चरितम्—लीलाएँ; कः—कौन; तृप्येत—तृप्त की जा सकती है; अमृतम्—ऐसी अमृतमय; जुषन्—भाग लेते हुए, सेवन करने से।

हे ब्राह्मण, अनन्त भगवान् अपनी इच्छानुसार स्वतंत्र रूप से कर्म करते हैं। उन्होंने वृन्दावन में ग्वालबाल के रूप में जो अमृत तुल्य उदार लीलाएँ सम्पन्न कीं भला उन्हें सुनकर कौन तृप्त हो सकता है?

श्रीशुक उवाच

कालिन्दां कालियस्यासीद् हृदः कश्चिद्विषाग्निना ।

श्रप्यमाणपया यस्मिन्पतन्त्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कालिन्दां—यमुना नदी के भीतर; कालियस्य—कालिय नाग का; आसीत्—था; हृदः—झील, सरोवर, कुंड; कश्चित्—कोई; विष—उसके विष की; अग्निना—अग्नि से; श्रप्यमाण—गर्मी से उबलकर; पयाः—इसका जल; यस्मिन्—जिसमें; पतन्ति—गिर पड़ते थे; उपरि-गाः—ऊपर से जाते हुए; खगाः—पक्षीगण।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कालिन्दी (यमुना) नदी के भीतर एक सरोवर (कुंड) था जिसमें कालिय नाग रह रहा था जिसके अग्नि-तुल्य विष से उसका जल निरन्तर उबलता रहता था। इस तरह से उत्पन्न भाप इतनी विषैली होती थी कि दूषित सरोवर के ऊपर से उड़नेवाले पक्षी उसमें गिर पड़ते थे।

तात्पर्य : इस प्रसंग में आचार्यों की व्याख्या है कि कालिय कुंड (सरोवर) नदी की मुख्य धारा से

अलग स्थित था अन्यथा यमुना का जल मथुरा जैसे नगरों तथा उसके आगे के स्थानों में भी विषैला हो गया होता।

विप्रुष्मता विषदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ।

म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

विप्रुष्ट-मता—जल की बूंदों से युक्त; विष-द—विषैली; ऊर्मि—लहरें; मारुतेन—वायु के द्वारा; अभिमर्शिताः—स्पर्श करते; म्रियन्ते—मर जाते; तीर-गाः—तट पर स्थित; यस्य—जिसके; प्राणिनः—सारे जीव; स्थिर-जङ्गमाः—चर तथा अचर।

उस घातक सरोवर के ऊपर से बहने वाली हवा जल की बूंदों को तट तक ले जाती थी। उस

विषैली वायु के सम्पर्क में आने से ही तट की सारी वनस्पति तथा जीवजन्तु मर जाते थे।

तात्पर्य : स्थिर शब्द वृक्ष समेत सभी प्रकार की वनस्पति का द्योतक है और जङ्गम शब्द सचल प्राणियों, यथा पशुओं, सरीसृपों, पक्षियों और कीटों का द्योतक है। श्रील श्रीधर गोस्वामी ने श्री हरिवंश पुराण (विष्णु पर्व ११.४२, ४४, ४६) से इस सरोवर के विषय में उद्धरण दिया है—

दीर्घं योजनविस्तारं दुस्तरं त्रिदशैरपि ।

गंभीरं अक्षोभ्यजलं निष्कम्पमिव सागरम् ॥

दुःखोपसर्प तीरेषु ससर्पैर्विपुलैर्बिलैः ।

विषारणिभवस्याग्नेर्धूमैः परिवेष्टितम् ॥

तृणेष्वपि पतत्स्वप्सु ज्वलन्तमिव तेजसा ।

समन्ताद् योजनं साग्रं तीरेष्वपि दुरासदम् ॥

“सरोवर कहीं कहीं पर आठ मील तक चौड़ा था और देवता तक उसे पार नहीं कर सकते थे। सरोवर का जल काफी गहरा था और समुद्र की अचल गहराइयों की भाँति क्षुब्ध नहीं हो सकता था। उस सरोवर तक पहुँचना कठिन था क्योंकि इसके किनारे पर अनेक बिल थे जिनमें सर्प रहते थे। सरोवर के चारों ओर सर्पों के विष की अग्नि से उत्पन्न कुहरा था और यह शक्तिशाली अग्नि जल में गिरने वाले घास के तिनके तक को तुरन्त भस्म कर देती थी। सरोवर से आठ मील की दूरी तक वायुमण्डल अत्यन्त निकृष्ट था।”

श्रील सनातन गोस्वामी कहते हैं कि जल स्तम्भ के गुह्य विज्ञान से अर्थात् जल से ठोस वस्तुएँ

बनाने की विद्या से कालिय ने सरोवर के भीतर अपना नगर बना रखा था।

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन
दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्ग-
मास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस कालिय को; चण्ड-वेग—डरावनी शक्ति का; विष—विष; वीर्यम्—प्रबल; अवेक्ष्य—देखकर; तेन—उसके द्वारा; दुष्टाम्—प्रदूषित; नदीम्—नदी को; च—तथा; खल—ईर्ष्यालु असुर; संयमन—दमन करने के लिए; अवतारः—आध्यात्मिक जगत से अवतरण हुआ है, जिसका; कृष्णः—कृष्ण; कदम्बम्—कदम्ब वृक्ष में; अधिरुह्य—चढ़कर; ततः—उसमें से; अति-तुङ्गम्—अत्यन्त ऊँचा; आस्फोट्य—अपनी भुजाएँ ठोंकते हुए; गाढ-रशनः—दृढ़ता से फेंटा बाँधते हुए; न्यपतत्—कूद पड़े; विष-उदे—विषैले जल में।

भगवान् कृष्ण ने देखा कि कालिय नाग ने किस तरह अपने अत्यन्त प्रबल विष से यमुना नदी को दूषित कर रखा था। चूँकि कृष्ण आध्यात्मिक जगत से ईर्ष्यालु असुरों का दमन करने के लिए ही विशेष रूप से अवतरित हुए थे इसलिए वे तुरन्त एक बहुत ऊँचे कदम्ब वृक्ष की चोटी पर चढ़ गये और उन्होंने युद्ध के लिए अपने को तैयार कर लिया। उन्होंने अपना फेंटा बाँधा, बाहुओं में ताल दी और फिर विषैले जल में कूद पड़े।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण ने कालिय से युद्ध करने की तैयारी में अपने बालों को भी पीछे बाँध लिया।

सर्पहृदः पुरुषसारनिपातवेग-
सङ्क्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।
पर्यक्प्लुतो विषकषायबिभीषणोर्मि-
धावन्धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सर्प-हृदः—सर्प का सरोवर; पुरुष-सार—परम आदरणीय भगवान् के; निपात-वेग—बलपूर्वक गिरने से; सङ्क्षोभित—पूरी तरह से विचलित; उरग—सर्पों का; विष-उच्छ्वसित—विष में ही श्वास लेते हुए; अम्बु-राशिः—जिसका सारा जल; पर्यक्—चारों ओर; प्लुतः—बढ़ा हुआ; विष-कषाय—विष से दूषित होने से; बिभीषण—भयावनी; ऊर्मिः—लहरें; धावन्—उठती हुई; धनुः-शतम्—एक सौ धनुष की दूरी; अनन्त-बलस्य—असीम बल वाले के लिए; किम्—क्या; तत्—वह।

भगवान् जब सर्प के सरोवर में कूदे तो सारे सर्प उत्तेजित हो उठे और तेजी से साँस लेने लगे जिसके कारण विष की मात्रा से जल और भी दूषित हो उठा। भगवान् के प्रविष्ट होने के वेग से सरोवर चारों ओर उमड़ने लगा और भयंकर विषैली लहरों ने एक सौ धनुष-दूरी तक की सारी

भूमि को आप्लावित कर दिया। किन्तु अनन्त शक्ति रखने वाले भगवान् के लिए यह तनिक भी विस्मयजनक नहीं है।

तस्य हृदे विहरतो भुजदण्डघूर्ण-
 वार्धोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ।
 आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य
 चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उन्के; हृदे—सरोवर में; विहरतः—क्रीड़ा करते हुए; भुज-दण्ड—अपनी बलशाली भुजाओं को; घूर्ण—घुमाया;
 वाः—जल की; वार्धोषम्—ध्वनि; अङ्ग—हे राजा; वर-वारण—विशाल हाथी की तरह; विक्रमस्य—शौर्यका; आश्रुत्य—सुनकर;
 तत्—वह; स्व-सदन—अपने निवास का; अभिभवम्—अतिक्रमण; निरीक्ष्य—देखकर; चक्षुः-श्रवाः—कालिय; समसरत्—
 आगे आया; तत्—उसे; अमृष्यमाणः—सहन न कर सकने से।

कालिय-सरोवर में कृष्ण अपनी विशाल बाहें घुमाते और तरह तरह से जल में गूँज पैदा करते हुए, शाही हाथी की तरह क्रीड़ा करने लगे। जब कालिय ने ये शब्द सुने तो वह जान गया कि कोई उसके सरोवर में घुस आया है। वह इसे सहन नहीं कर पाया अतः वह तुरन्त ही बाहर निकला।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण जल के भीतर केवल अपने हाथ-पाँव पटककर अद्भुत संगीतमय ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे।

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं
 श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ।
 क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रि
 सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उन्को; प्रेक्षणीय—देखने में आकर्षक; सु-कुमार—अत्यन्त सुकोमल; घन—बादल की तरह; अवदातम्—सफेद चमकता; श्रीवत्स—श्रीवत्स चिह्न धारण किये; पीत—तथा पीला; वसनम्—वस्त्र; स्मित—हँसते हुए; सुन्दर—सुन्दर;
 आस्यम्—मुख वाले; क्रीडन्तम्—क्रीड़ा करते हुए; अप्रति-भयम्—अन्यों के भय के बिना; कमल—कमल के; उदर—भीतरी भाग जैसा; अङ्घ्रिम्—चरण; सन्दश्य—काटते हुए; मर्मसु—वक्षस्थल पर; रुषा—क्रोध से; भुजया—कुण्डली से; चछाद—
 लपेट लिया।

कालिय ने देखा कि पीले रेशमी वस्त्र धारण किये श्रीकृष्ण अत्यन्त सुकोमल लग रहे थे, उनका आकर्षक शरीर सफेद बादलों की तरह चमक रहा था, उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न था, उनका मुखमंडल सुमधुर हँसी से युक्त था और उनके चरण कमल के फूल के गुच्छों

के सदृश थे। भगवान् निडर होकर जल में क्रीड़ा कर रहे थे। उनके अद्भुत रूप के बावजूद ईर्ष्यालु कालिय ने क्रुद्ध होकर उनके वक्षस्थल पर डस लिया और फिर उन्हें अपनी कुंडली में पूरी तरह से लपेट लिया।

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट-

मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ।

कृष्णोऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा

दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तम्—उनको; नाग—सर्प की; भोग—कुंडली के भीतर; परिवीतम्—घिरा हुआ; अदृष्ट-चेष्टम्—किसी प्रकार की गति न दिखलाते हुए; आलोक्य—देखकर; तत्-प्रिय-सखाः—उनके प्रिय सखा; पशु-पाः—ग्वाले; भृश-आर्ताः—अत्यधिक विचलित; कृष्णो—कृष्ण को; अर्पित—अर्पित किया; आत्म—स्वयं को; सु-हृत्—अपने सम्बन्धी; अर्थ—सम्पत्ति; कलत्र—पत्नियाँ; कामाः—तथा सारी भोग्य वस्तुएँ; दुःख—पीड़ा से; अनुशोक—पश्चात्ताप; भय—तथा डर; मूढ—मोहित; धियः—बुद्धि; निपेतुः—भूमि पर गिर पड़े।

जब ग्वाल समुदाय के सदस्यों ने, जिन्होंने कृष्ण को अपना सर्वप्रिय मित्र मान रखा था, उन्हें नाग की कुण्डली में लिपटा हुआ और गतिहीन देखा तो वे अत्यधिक विचलित हो उठे। उन्होंने कृष्ण को अपना सर्वस्व—अपने आप को, अपने परिवार, अपनी सम्पत्ति, अपनी पत्नियाँ तथा सारे आनन्द—अर्पित कर रखा था। भगवान् को कालिय सर्प के चंगुल में देखकर उनकी बुद्धि शोक, पश्चात्ताप तथा भय से भ्रष्ट हो गई और वे पृथ्वी पर गिर पड़े।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि ग्वालबाल, कुछ गोप तथा आस-पास के किसान जो कृष्ण के भक्त थे वे भूमि पर इस प्रकार गिर पड़े मानों जड़ से कटे हुए वृक्ष हों।

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः ।

कृष्णो न्यस्तेक्षणा भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; वृषाः—बैल; वत्सतर्यः—बछिया; क्रन्दमानाः—जोर से चिल्लाते हुए; सु-दुःखिताः—अत्यधिक दुःखित; कृष्णो—कृष्ण पर; न्यस्त—गड़ा दिया; ईक्षणाः—अपनी नजर; भीताः—भयभीत; रुदन्त्यः—रोते हुए; इव—मानो; तस्थिरे—बिना हिले-डुले खड़े रहे।

गौवें, बैल तथा बछड़ियाँ सभी अत्यधिक दुखारी होकर करुणापूर्वक कृष्ण को पुकारने लगीं। वे पशु उन पर अपनी दृष्टि गड़ाये हुए भयवश बिना हिले-डुले खड़े रहे मानो चिल्लाना चाह रहे हों परन्तु आघात के कारण अश्रु न बहा सकते हों।

अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ।

उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; व्रजे—वृन्दावन में; महा-उत्पाताः—बड़े बड़े उपद्रव; त्रि-विधाः—तीन प्रकार के; हि—निस्सन्देह; अति-दारुणाः—अत्यन्त भयावने; उत्पेतुः—प्रकट हुए; भुवि—पृथ्वी पर; दिवि—आकाश में; आत्मनि—जीवों के शरीरों में; आसन्न—निकट; भय—खतरा; संशिनः—घोषणा करते हुए, सूचना देते हुए।

तब वृन्दावन क्षेत्र में सभी तीन प्रकार के—पृथ्वी पर होनेवाले, आकाश में होनेवाले तथा जीवों के शरीर में होनेवाले—भयावने अपशकुन प्रकट होने लगे जो तुरन्त आने वाले खतरे की चेतावनी कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार अपशकुन इस प्रकार थे: पृथ्वी में कंपन उत्पन्न होने लगे, आकाश से उल्कापात होने लगा और जीवों के शरीर में कम्पन के साथ ही बाईं आँख तथा शरीर के अन्य अंग फड़कने लगे। ये अपशकुन तुरन्त आने वाले संकट की सूचना देते हैं।

तानालक्ष्य भयोद्धिग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः ।

विना रामेण गाः कृष्णां ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥

तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ।

तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥

आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ।

निर्जग्मुर्गोकुलादीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तान्—उन संकेतों को; आलक्ष्य—देखकर; भय-उद्धिग्नाः—भय से विचलित; गोपाः—गवाले; नन्द-पुरः-गमाः—नन्द महाराज इत्यादि; विना—रहित; रामेण—बलराम के; गाः—गाँवें; कृष्णम्—कृष्ण को; ज्ञात्वा—जानकर; चारयितुम्—चराने के लिए; गतम्—गया हुआ; तैः—उनसे; दुर्निमित्तैः—अपशकुनों से; निधनम्—विनाश; मत्वा—मानकर; प्राप्तम्—प्राप्त किया; अतत्-विदः—उनके ऐश्वर्य को न जानने से; तत्-प्राणाः—उन्हें अपना प्राण मानकर; तत्-मनस्काः—उन्हीं में लीन मन; ते—वे; दुःख—दुख; शोक—शोक; भय—तथा भय से; आतुराः—विह्वल; आ-बाल—बच्चों समेत; वृद्ध—बूढ़े लोग; वनिताः—तथा स्त्रियाँ; सर्वे—सभी; अङ्ग—हे राजा परीक्षित; पशु-वृत्तयः—जिस तरह वत्सल गाय अपने बछड़े के साथ करती है; निर्जग्मुः—बाहर चले गये; गोकुलात्—गोकुल से; दीनाः—दीन समझकर; कृष्ण-दर्शन—कृष्ण को देखने के लिए; लालसाः—उत्सुक, लालायित।

इन अपशकुनों को देखकर नन्द महाराज तथा अन्य गवाले भयभीत थे क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि उस दिन कृष्ण अपने बड़े भाई बलराम के बिना गाय चराने गये थे। चूँकि उन्होंने कृष्ण को अपना प्राण मानते हुए अपने मन उन्हीं पर वार दिये थे क्योंकि वे उनकी महान् शक्ति तथा ऐश्वर्य से अनजान थे। इस तरह उन्होंने इन अपशकुनों से यह अर्थ निकाला कि कृष्ण की मृत्यु हो गई है

और वे दुःख, पश्चात्ताप तथा भय से अभिभूत हो गये थे। बालक, स्त्रियाँ तथा वृद्ध पुरुषों समेत वृन्दावन के सारे निवासी कृष्ण को उसी तरह मानते थे जिस तरह गाय अपने निरीह नवजात बछड़े को मानती है। इस तरह ये दीन-दुखी लोग उन्हें ढूँढ़ने के इरादे से गाँव से बाहर दौड़ पड़े।

तांस्तथा कातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः ।

प्रहस्य किञ्चिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तान्—उन्हें; तथा—इस तरह; कातरान्—व्याकुल; वीक्ष्य—देखकर; भगवान्—भगवान्; माधवः—समस्त योग विद्या के स्वामी; बलः—बलराम; प्रहस्य—मुसकाते हुए; किञ्चित्—थोड़ा-सा; न—नहीं; उवाच—कहा; प्रभाव-ज्ञः—बल को जानने वाले; अनुजस्य—छोटे भाई के; सः—उन्होंने।

समस्त दिव्य ज्ञान के स्वामी भगवान् बलराम हँसने लगे और वृन्दावन-वासियों को इस तरह व्याकुल देखकर कुछ भी नहीं बोले क्योंकि उन्हें अपने छोटे भाई के असाधारण बल का पता था।

तात्पर्य : श्रीबलराम भगवान् कृष्ण के ही स्वांश हैं अतः उनसे अभिन्न हैं। वस्तुतः वे पृथक् रूपों में एक ही परम सत्य हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् बलराम हँस रहे थे क्योंकि उन्होंने सोचा, “कृष्ण मेरे शेषनाग रूप में वाले मुझसे कभी नहीं खेलते लेकिन अब वे कालिय नामक सामान्य संसारी सर्प से खेल रहे हैं।”

यह प्रश्न किया जा सकता है कि कृष्ण तथा बलराम ने क्यों अपने प्रिय भक्तों को कालिय नाग की कुण्डली के भीतर कृष्ण के बन्दी रहने की क्षणिक अवधि तक इतनी वेदना में रखा। यह स्मरण रखना चाहिए कि क्योंकि वृन्दावन के वासी नितान्त मुक्तात्मा थे अतएव उन्हें भौतिक भावों का अनुभव नहीं हुआ। जब उन्होंने अपने प्रिय कृष्ण को क्षणिक संकट में देखा तो उनका कृष्ण के लिए प्रेम पराकाष्ठा तक पहुँच गया और इस तरह वे उनके प्रेमभाव से पूर्णतया मग्न हो गये। सारी परिस्थिति को आध्यात्मिक दृष्टि से देखना होगा अन्यथा यह दिखाई नहीं पड़ेगी।

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ।

भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; अन्वेषमाणाः—ढूँढ़ते हुए; दयितम्—अपने प्रियतम; कृष्णम्—कृष्ण को; सूचितया—चिन्हित (पथ); पदैः—पैर के निशानों से; भगवत्-लक्षणैः—भगवान् के चिह्नों से; जग्मुः—गये; पदव्या—रास्ते से होकर; यमुना-तटम्—यमुना के किनारे तक ।

वृन्दावन के निवासी कृष्ण के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए अपने सर्वप्रिय कृष्ण की खोज में यमुना के किनारे की ओर दौड़े चले गये क्योंकि उन पदचिह्नों में भगवान् के अनूठे चिन्ह थे ।

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनि-
ध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ।
मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे
निरीक्षमाणा ययुरङ्ग सत्वराः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; तत्र तत्र—यहाँ वहाँ; अब्ज—कमल के फूल; यव—जौ; अङ्कुश—हाथी हाँकने का अंकुश; अशनि—वज्र; ध्वज—तथा पताका से; उपपन्नानि—विभूषित; पदानि—पदचिह्नों को; विट्-पतेः—ग्वाल जाति के स्वामी, भगवान् कृष्ण के; मार्गे—रास्ते में; गवाम्—गौवों के; अन्य-पद—तथा अन्य पदचिह्न; अन्तर-अन्तरे—बीच बीच में; निरीक्षमाणाः—देखकर; युयुः—गये; अङ्ग—हे राजन्; स-त्वराः—तेजी से ।

समस्त ग्वाल समुदाय के स्वामी भगवान् कृष्ण के पदचिन्ह कमल के फूल, जौ, हाथी के अंकुश, वज्र तथा पताका से युक्त थे । हे राजा परीक्षित, मार्ग में गौवों के पदचिह्नों के बीच बीच में उनके पदचिह्नों को देखते हुए वृन्दावन के निवासी तेजी से दौड़े चले गये ।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी इस प्रकार टीका करते हैं: “चूँकि कृष्ण कुछ समय पहले उस मार्ग से होकर निकले थे तो फिर उनके पदचिह्न गौवों, ग्वालबालों इत्यादि के पदचिह्नों से घिरकर मिट क्यों नहीं गये? वृन्दावन के पशुओं तथा पक्षियों के पदचिह्नों से वे क्यों नहीं मिटे थे? इसका उत्तर विश्पति शब्द द्वारा सूचित होता है। चूँकि भगवान् कृष्ण सभी जीवों की सम्पत्ति हैं अतएव ब्रज के जंगल के सारे निवासी उनके चरणचिह्नों को जो पृथ्वी के आभूषण समान थे महान् कोष की तरह सुरक्षित रखेंगे। वृन्दावन के अन्तर्गत एक भी प्राणी कृष्ण के पदचिह्नों के ऊपर कभी भी नहीं चला होगा।”

अन्तर्हृदे भुजगभोगपरीतमारात्
कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ।
गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च

सङ्क्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अन्तः—भीतर; हृदे—सरोवर के; भुजग—सर्प के; भोग—शरीर के भीतर; परीतम्—लिपटे; आरात्—दूर से ही; कृष्णम्—कृष्ण को; निरीहम्—निश्चेष्ट; उपलभ्य—देखकर; जल-आशय—जलाशय के; अन्ते—भीतर; गोपान्—ग्वालबालों को; च—तथा; मूढ-धिषणान्—अचेत; परितः—घेरकर; पशून्—पशुओं को; च—तथा; सङ्क्रन्दतः—चिल्लाते हुए; परम-कश्मलम्—महानतम मोह; आपुः—अनुभव किया; आर्ताः—पीड़ित होने से।

ज्योंही वे यमुना नदी के किनारे की ओर भागे जा रहे थे त्योंही उन्होंने दूर से देखा कि कृष्ण सरोवर में काले साँप की कुण्डली में निश्चेष्ट पड़े हैं। उन्होंने यह भी देखा कि सारे ग्वालबाल मूर्छित होकर पड़े हैं और सारे पशु उनके चारों ओर खड़े होकर कृष्ण के लिए रम्भा रहे हैं। यह दृश्य देखकर वृन्दावनवासी वेदना तथा भ्रम के कारण विह्वल हो उठे।

तात्पर्य : हड़बड़ीमें एवं शोकाकुल वृन्दावनवासियों ने यह पता लगाने का प्रयास किया कि कहीं कालिय कृष्ण को किनारे से जल में बलपूर्वक घसीट तो नहीं ले गया था या कृष्ण स्वयं किनारे से कूदकर सर्प के चंगुल में जा पहुँचे थे। उन्हें परिस्थिति के विषय में कुछ भी नहीं पता चल पाया और कृष्ण के ग्वालसखा अचेत होने के कारण उनसे कुछ भी नहीं बता सकते थे। गौवें तथा बछड़े कृष्ण के लिए रम्भा रहे थे। सारी परिस्थिति विह्वल बनाने वाली थी जिससे वृन्दावन के वासियों के मन में आघात तथा वेदना उत्पन्न हो गयी थी।

गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते

तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ।

ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः

शून्यं प्रियव्यतिहतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; अनुरक्त-मनसः—उनसे अनुरक्त मनवाली; भगवति—भगवान् में; अनन्ते—अनन्त; तत्—उनका; सौहृद—प्रेमपूर्ण; स्मित—मुसकान; विलोक—चितवन; गिरः—तथा वचन; स्मरन्त्यः—स्मरण कर करके; ग्रस्ते—पकड़े जाकर; अहिना—सर्प द्वारा; प्रिय-तमे—सबसे प्यारे; भृश—अत्यन्त; दुःख—पीड़ा से; तप्ताः—पीड़ित; शून्यम्—रिक्त; प्रिय-व्यतिहतम्—अपने प्रिय से विलग होकर; ददृशुः—उन्होंने देखा; त्रि-लोकम्—तीनों लोकों (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) को।

जब युवती गोपियों ने, जिनके मन निरंतर अनन्त भगवान् कृष्ण में अनुरक्त रहते थे, देखा कि वे कालिय के चंगुल में हैं, तो उन्हें उनकी मित्रता, उनकी मुसकान-भरी चितवन तथा उनके बचनों का स्मरण हो आया। अत्यन्त शोक से संतप्त होने के कारण उन्हें सारा ब्रह्माण्ड शून्य (रिक्त) दिखाई पड़ने लगा।

ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां
 तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ।
 तास्ता ब्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्
 कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे; कृष्ण-मातरम्—कृष्ण की माता (यशोदा); अपत्यम्—अपने पुत्र पर; अनुप्रविष्टाम्—अपनी दृष्टि टिकाये; तुल्य—समान रूप से; व्यथाः—व्यथित; समनुगृह्य—दृढ़तापूर्वक पकड़कर; शुचः—शोक की बाढ़; स्रवन्त्यः—उमड़ते हुए; ताः ताः—उनमें से हर शब्द को; ब्रज-प्रिय—ब्रज के परम प्रिय की; कथाः—कथाएँ; कथयन्त्यः—कहते हुए; आसन्—वे खड़ी रहीं; कृष्ण-आनने—कृष्ण के मुख पर; अर्पित—चढ़ायी, अर्पित की हुई; दृशः—अपनी आँखें; मृतक—शव; प्रतीकाः—तुल्य ।

यद्यपि प्रौढ़ गोपियों को उन्हीं के बराबर पीड़ा थी और उनमें शोकपूर्ण अश्रुओं की झड़ी लगी हुई थी किन्तु उन्होंने बलपूर्वक कृष्ण की माता को पकड़े रखा, जिनकी चेतना पूर्णतया अपने पुत्र में समा गयी थी। ये गोपियाँ शवों की तरह खड़ी रहकर, अपनी आँखें कृष्ण के मुख पर टिकाये, बारी बारी से ब्रज के परम लाड़ले की लीलाएँ कहे जा रही थीं।

कृष्णप्राणान्निर्विशतो नन्दादीन्वीक्ष्य तं हृदम् ।
 प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-प्राणान्—जिनके प्राण कृष्ण थे; निर्विशतः—प्रवेश करते; नन्द-आदीन्—नन्द महाराज इत्यादि को; वीक्ष्य—देखकर; तम्—उस; हृदम्—सरोवर में; प्रत्यषेधत्—मना किया; सः—वे; भगवान्—भगवान्; रामः—बलराम ने; कृष्ण—कृष्ण की; अनुभाव—शक्ति; वित्—भलीभाँति जानते हुए ।

तत्पश्चात् भगवान् बलराम ने देखा कि नन्द महाराज तथा कृष्ण को अपना जीवन अर्पित करनेवाले अन्य ग्वाले सर्प-सरोवर में प्रवेश करने जा रहे हैं। भगवान् होने के नाते बलराम को कृष्ण की वास्तविक शक्ति का पूरा पूरा ज्ञान था अतएव उन्होंने उन सबों को रोका।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी लिखते हैं कि भगवान् बलराम ने कुछ ग्वालों से बातें करके, कुछ को पकड़कर और कुछ पर अपनी शक्तिदायिनी हँसीभरी मुसकान बिखेरकर रोका। सारे ग्वाले इस स्थिति से व्यग्र होकर कृष्ण के लिए सर्प-सरोवर में घुसकर अपने प्राण देने के लिए तैयार थे।

इत्थम्स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य
 सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ।
 आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः

स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह से; स्व-गोकुलम्—गोकुल के अपने कुल में; अनन्य-गतिम्—(उनके अतिरिक्त) कोई अन्य गन्तव्य या आश्रय न होने से; निरीक्ष्य—देखकर; स-स्त्री—स्त्रियों समेत; कुमारम्—तथा बच्चे; अति-दुःखितम्—अत्यन्त दुखी; आत्म-हेतोः—अपने कारण; आज्ञाय—जानकर; मर्त्य-पदवीम्—मरने वालों की तरह; अनुवर्तमानः—अनुकरण करते हुए; स्थित्वा—रहे आकर; मुहूर्तम्—कुछ काल तक; उदतिष्ठत्—उठ खड़े हुए; उरङ्ग—सर्प के; बन्धात्—बन्धन से।

भगवान् कुछ काल तक सामान्य मर्त्यप्राणी के व्यवहार का अनुकरण करते हुए सर्प की कुंडली के भीतर पड़े रहे। किन्तु जब उन्हें इसका भान हुआ कि उनके गोकुल ग्राम की स्त्रियाँ, बच्चे तथा अन्य निवासी अपने जीवन के एकमात्र आधार उनके प्रेम के कारण विकट दुखी हैं, तो वे कालिय सर्प के बन्धन से तुरन्त उठ खड़े हुए।

तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोग-

स्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान्भुजङ्गः ।

तस्थौ श्वसञ्चसनरन्ध्रविषाम्बरीष-

स्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तत्—उनके (कृष्ण के); प्रथ्यमान—बढ़ते हुए; वपुषा—दिव्य शरीर के द्वारा; व्यथित—पीड़ित; आत्म—अपना; भोगः—शरीर; त्यक्त्वा—उन्हें त्यागकर; उन्नमय्य—ऊँचे उठते हुए; कुपितः—क्रुद्ध; स्व-फणान्—अपने फनों को; भुजङ्ग—सर्प; तस्थौ—चुपचाप खड़ा रहा; श्वसन्—तेजी से साँस लेता हुआ, फुफकारता; श्वसन-रन्ध्र—उसके नथुने; विष-अम्बरीष—विष उबालने के दो पात्रों की तरह; स्तब्ध—स्थिर; ईक्षण—उसकी आँखें; उल्मुक—लपटों की तरह; मुखः—उसका मुँह; हरिम्—भगवान् को; ईक्षमाणः—देखता हुआ।

जब भगवान् के शरीर का विस्तार होने से कालिय की कुंडली दुखने लगी तो उसने उन्हें छोड़ दिया। तब वह सर्प बहुत ही क्रुद्ध होकर अपने फनों को ऊँचे उठाकर स्थिर खड़ा हो गया और जोर जोर से फुफकारने लगा। उसके नथुने विष पकाने के पात्रों जैसे लग रहे थे और उसके मुखपर स्थित घूरती आँखें आग की लपटों की तरह लग रही थीं। इस तरह उस सर्प ने भगवान् पर नजर डाली।

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं

द्वे सृक्वणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ।

क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो

बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको, कालिय को; जिह्वया—अपनी जीभ से; द्वि-शिखया—दोमुही; परिलेलिहानम्—बारबार चाटता हुआ; द्वे—दो; सूक्वणी—होंठ; हि—निस्सन्देह; अति-कराल—अत्यन्त भयावने; विष-अग्नि—विषैली अग्नि से पूर्ण; दृष्टिम्—जिसकी दृष्टि; क्रीडन्—खेलती हुई; अमुम्—उसको; परिससार—चारों ओर घूम गई; यथा—जिस तरह; खग-इन्द्र—पक्षिराज गरुड़; बभ्राम—चारों ओर घूमा; सः—कालिय; अपि—भी; अवसरम्—(प्रहार करने का) अवसर; प्रसमीक्षमाणः—ध्यानपूर्वक देखते हुए, की ताक में।

कालिय बारम्बार अपनी दोमुही जीभ से अपने होंठों को चाटता और विषैली विकराल अग्नि से पूर्ण अपनी दृष्टि से कृष्ण को घूरता जा रहा था। किन्तु कृष्ण ने मानो खेल-खेल में ही उसका उसी तरह चक्कर लगाया जिस तरह गरुड़ सर्प से खिलवाड़ करता है। प्रतिक्रिया के रूप में, कालिय भी उनके साथ साथ घूमता जाता था और भगवान् को काटने का अवसर ढूँढ़ रहा था।

तात्पर्य : कृष्ण इतनी चतुराई से कालिय के चारों ओर घूम रहे थे कि कालिय को उसे काटने का अवसर ही नहीं मिल पाया। इस तरह श्रीकृष्ण की दिव्य चंचलता के द्वारा सर्प पराजित हो गया।

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांस-

मानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः ।

तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र-

पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्नर्त ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; परिभ्रम—भगवान् द्वारा उसके चारों ओर चक्कर लगाने के कारण; हत—विनष्ट; ओजसम्—जिसका बल; उन्नत—ऊपर उठा; अंसम्—जिसके कंधे; आनम्य—झुकने के लिए बाध्य करके; तत्—उसके; पृथु-शिरःसु—चौड़े सिर पर; अधिरूढः—चढ़कर; आद्यः—हर वस्तु के मूल; तत्—उसके; मूर्ध—सिरों पर; रत्न-निकर—अनेकानेक रत्न; स्पर्श—छूने से; अति-ताम्र—अत्यधिक लाल हुए; पाद-अम्बुजः—चरणकमल; अखिल-कला—समस्त कलाओं के; आदि-गुरुः—मूल गुरु; नर्त—नाचने लगे।

लगातार चक्कर लगाते लगाते सर्प के बल को बुरी तरह क्षीण करके, समस्त वस्तुओं के मूल श्रीकृष्ण ने कालिय के उभरे हुए कन्धों को नीचे दबा दिया और उसके चौड़े फनों पर चढ़ गये। इस तरह समस्त कलाओं के आदि गुरु भगवान् श्रीकृष्ण नृत्य करने लगे और सर्प के फनों पर स्थित असंख्य मणियों के स्पर्श से उनके चरण गहरे लाल रंग के हो गये।

तात्पर्य : श्री हरि वंश में लिखा है कि शिरः स कृष्णो जग्राह स्व-हस्तेनावनम्य—कृष्ण ने अपने हाथ से कालिय का सिर दबोच लिया और उसे जबरदस्ती झुका दिया। इस संसार में अधिकांश लोग परम पुरुष, परम सत्य को शीश झुकाने में आनाकानी करते हैं। भौतिक चेतना की दूषित अवस्था में हम बद्ध आत्मा अपने नगण्य पद पर इठलाने लगते हैं और भगवान् के समक्ष शीश झुकाने में

आनाकानी करते हैं। किन्तु जिस तरह भगवान् कृष्ण ने बलपूर्वक कालिय के सिरों को नीचे दबाकर उसे हरा दिया उसी तरह भगवान् की शक्ति अटल काल के रूप में सारी बद्ध आत्माओं को मार डालती है और उनके दम्भी सिरों को झुकने के लिए विवश कर देती है। अतः हमें चाहिए कि हम भौतिक जीवन के बनावटी पद को त्यागकर भगवान् के चरणकमलों पर विनत होकर उनके आज्ञाकारी सेवक बन जायें।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् के चरणकमल ताँबे के समान लाल इसलिए हो गये क्योंकि वे कालिय के फनों पर लगी असंख्य कठोर मणियों के संपर्क में आ गए थे। तब भगवान् कृष्ण उन तेजमय लाल चरणों से सर्प के फनों की अस्थिर, गतिमान सतह पर नाचकर अपनी कला-चातुरी का प्रदर्शन करने लगे। नृत्य कला का यह असामान्य प्रदर्शन वृन्दावन की तरुण स्त्रियों को आनन्द प्रदान करने के निमित्त था, जो कृष्ण के साथ प्रेम में बुरी तरह फँसी थीं।

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीय-

गन्धर्वसिद्धमुनिचारणदेववध्वः ।

प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीत-

पुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तम्—उनको; नर्तुम्—नाचने में; उद्यतम्—लगा हुआ; अवेक्ष्य—देखकर; तदा—तब; तदीय—उनके सेवक; गन्धर्व-सिद्ध—गन्धर्व तथा सिद्धगण; मुनि-चारण—ऋषि तथा चारण; देव-वध्वः—देवपत्नियाँ; प्रीत्या—हर्षपूर्वक; मृदङ्ग-पणव-आनक—विभिन्न प्रकार के ढोल; वाद्य—बाजों समेत; गीत—गीत; पुष्प—फूल; उपहार—अन्य भेंटें; नुतिभिः—तथा स्तुतियों द्वारा; सहसा—तुरन्त; उपसेदुः—आ गये।

भगवान् उनको नाचते देखकर स्वर्गलोक के उनके सेवक—गन्धर्व, सिद्ध, मुनि, चारण तथा देवपत्नियाँ—वहाँ तुरन्त आ गये। वे मृदंग, पणव तथा आनक जैसे ढोल बजा-बजाकर कृष्ण के नृत्य का साथ देने लगे। उन्होंने गीत, फूल तथा स्तुतियों की भेंटें भी दीं।

तात्पर्य : जब देवताओं तथा उच्च लोक के अन्य निवासियों को पता चला कि कृष्ण नृत्य कला का अद्भुत प्रदर्शन स्वयं कर रहे हैं, तो वे तुरन्त उनकी सेवा में उपस्थित हो गये। जब नृत्य के साथ मृदंग वादन, गायन तथा स्तुति उच्चारण भी किया जाता है, तो उस नृत्य को देखना और भी सुन्दर तथा आनन्ददायक हो जाता है। कालिय सर्प के फनों पर आनन्दपूर्वक नाचने में व्यस्त भगवान् श्रीकृष्ण पर असंख्य फूलों की वर्षा होने से कलात्मक परिवेश में और वृद्धि हो गई।

यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णास्
 तत्तन्ममर्द खरदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ।
 क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ्
 नस्तो वमन्यरमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यत् यत्—जो जो; शिरः—सिर; न नमते—नहीं झुकते थे; अङ्ग—हे राजा परीक्षित; शत-एक-शीर्ष्णाः—१०१ सिरों वाला; तत्
 तत्—उन उन को; ममर्द—कुचल डाला; खर—दुष्टों को; दण्ड—सजा; धरः—देने वाले भगवान्; अङ्घ्रि-पातैः—अपने पैरों
 के प्रहार से; क्षीण-आयुषः—आयु क्षीण हो रहे कालिय का; भ्रमतः—जो अब भी घूम रहा था; उल्बणम्—भयावह;
 आस्यतः—मुखों से; असृक्—रक्त; नस्तः—नथुनों से; वमन्—कै; परम—अत्यन्त; कश्मलम्—कष्ट; आप—अनुभव किया;
 नागः—सर्प ने।

हे राजन्, कालिय के १०१ सिर थे और यदि इनमें से कोई एक नहीं झुकता था, तो क्रूर
 कृत्य करनेवालों को दंड देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने पाद-प्रहार से उस उद्दण्ड सिर को
 कुचल देते थे। जब कालिय मृत्यु के निकट पहुँच गया तो वह अपने सिरों को चारों ओर घुमाने
 लगा और अपने मुखों तथा नथुनों से बुरी तरह से रक्त वमन करने लगा। इस तरह सर्प को
 अत्यन्त पीड़ा तथा कष्ट का अनुभव होने लगा।

तस्याक्षिभिर्गारलमुद्धमतः शिरःसु
 यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।
 नृत्यन्पदानुनमयन्दमयां बभूव
 पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी; अक्षिभिः—आँखों से; गारलम्—विषैला कूड़ा; उद्धमतः—वमन करता हुआ; शिरःसु—सिरों में से; यत् यत्—
 जो जो; समुन्नमति—ऊपर उठता; निःश्वसतः—श्वास लेता हुआ; रुषा—क्रोध से; उच्चैः—काफी अधिक; नृत्यन्—नाचते हुए;
 पदा—अपने पाँव से; अनुनमयन्—झुकाते हुए; दमयाम् बभूव—दमन कर दिया; पुष्पैः—फूलों से; प्रपूजितः—पूजा जाकर;
 इव—सदृश; इह—इस अवसर पर; पुमान्—पुरुष; पुराणः—आदि।

कालिय अपनी आँखों से विषैला कीचड़ निकालते हुए रह रहकर अपने किसी एक सिर को
 ऊपर उठाने का दुस्साहस करके क्रोध से फुफकारता था। तब भगवान् उसपर नाचने लगते और
 अपने पाँव से नीचे झुकाकर उसका दमन कर देते। देवताओं ने इन सभी प्रदर्शनों को उचित
 अवसर जानकर आदि पुरुष की पूजा पुष्पवर्षा द्वारा की।

तच्चित्रताण्डवविरुग्नफणासहस्रो

रक्तं मुखैरुरु वमनृप भगनगात्रः ।
 स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं
 नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्—उनके; चित्र—विस्मयकारी; ताण्डव—शक्तिशाली नृत्य से; विरुग्न—भग्न; फणा-सहस्रः—अपने एक हजार फन;
 रक्तम्—रक्त; मुखैः—मुख से; उरु—अत्यधिक; वमन्—उगलते हुए; नृप—हे राजा परीक्षित; भग्न-गात्रः—कुचले अंगों वाला;
 स्मृत्वा—स्मरण करके; चर-अचर—सारे जड़ तथा जंगम प्राणियों के; गुरुम्—गुरु; पुरुषम्—पुरुष; पुराणम्—प्राचीन;
 नारायणम्—नारायण को; तम्—उन; अरणम्—शरण के लिए; मनसा—मन में।

हे राजा परीक्षित, भगवान् कृष्ण के द्वारा विस्मयजनक शक्तिशाली नृत्य करने से कालिय के सभी एक हजार फण कुचलकर टूट गये। तब अपने मुखों से बुरी तरह रक्त वमन करते हुए सर्प ने श्रीकृष्ण को समस्त चराचर के शाश्वत स्वामी आदि भगवान् श्रीनारायण के रूप में पहचाना। इस तरह कालिय ने मन ही मन भगवान् की शरण ग्रहण कर ली।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण (भाग १, अध्याय १६) में दिखलाया है कि इसके पूर्व जो कालिय विष उगल रहा था, वही अब विष समाप्त हो जाने से रक्त वमन करने लगा। इस तरह उसका हृदय विष रूपी कलुष से धुल गया। स्मृत्वा शब्द अत्यन्त सार्थक है। कालिय की पत्नियों वास्तव में सच्चे रूप से कृष्ण-भक्त थीं और आचार्यों का कथन है कि उन पत्नियों ने प्रायः अपने पति को भगवान् की शरण ग्रहण करने के लिए मनाने का, प्रयास किया था। अन्त में असह्य पीड़ा के कारण कालिय ने अपनी पत्नियों की सलाह का स्मरण किया और भगवान् की शरण ग्रहण कर ली। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि परम्परा से कालिय का प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी विष्णुवाहन गरुड़ रहा है। किन्तु कालिय ने यह अनुभव किया कि अब ऐसे प्रतिद्वन्द्वी से उसका पाला पड़ा है, जो गरुड़ से हजारों गुना बलशाली है अतएव हो न हो वह भगवान् ही हो सकता है। इस तरह कालिय ने भगवान् कृष्ण की शरण ग्रहण की।

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं
 पार्थिगप्रहारपरिरुग्नफणातपत्रम् ।
 दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य
 आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य—कृष्ण के; गर्भ—उदर में; जगतः—सारा ब्रह्माण्ड पाया जाता है; अति-भर—अत्यधिक भार से; अवसन्नम्—थका हुआ; पार्थिग—एड़ियों के; प्रहार—चोट से; परिरुग्न—क्षत-विक्षत; फणा—फन; आतपत्रम्—छातों की तरह; दृष्ट्वा—देखकर;

अहिम्—सर्प को; आद्यम्—आदि भगवान् के; उपसेदुः—निकट आर्यो; अमुष्य—कालिय की; पत्न्यः—पत्नियाँ; आर्ताः—पीड़ित; श्लथत्—बिखरे हुए; वसन—वस्त्र; भूषण—आभूषण; केश-बन्धाः—तथा केशपाश।

जब कालिय की पत्नियों ने देखा कि अखिल ब्रह्माण्ड को अपने उदर में धारण करनेवाले भगवान् कृष्ण के अत्यधिक भार से सर्प कितना थक गया है और किस तरह कृष्ण की एडियों के प्रहार से कालिय के छाते जैसे फन छिन्न-भिन्न हो गये हैं, तो उन्हें अतीव पीड़ा हुई। तब अपने वस्त्र, आभूषण तथा केश बिखराये हुए वे आदि भगवान् के निकट आईं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार कालिय की पत्नियाँ अपने पति के आसुरी कार्यों से तंग आ चुकी थीं। वे यही सोचती रहती थीं, “यदि यह नास्तिक भगवान् के दण्ड से मारा जाता है, तो इसे मरने दें। हम विधवा होकर भगवान् की पूजा में लग जायेंगी।” किन्तु जब उन स्त्रियों ने कालिय के मुख तथा अन्य अंगों की अभिव्यक्ति देखी तो समझ गई कि कालिय ने मन ही मन भगवान् की शरण ग्रहण कर ली है। यह देखकर कि वह विनयशीलता, पश्चात्ताप, शोक तथा सन्देह के लक्षण व्यक्त कर रहा है, उन्होंने सोचा, “देखो न, हम कितनी भाग्यशालिनी हैं! अब हमारा पति वैष्णव बन गया है। अतएव अब हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए।” उनमें अपने पश्चात्ताप करनेवाले पति के कष्ट तथा उसकी दयनीय अवस्था पर स्नेह उमड़ आया और वे सब की सब भगवान् के समक्ष आईं।

तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः

कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ।

साध्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्

मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे, कालिय की पत्नियाँ; तम्—उसको; सु-विग्न—अत्यन्त उद्विग्न; मनसः—मन; अथ—तब; पुरः-कृत—सामने करके; अर्भाः—अपने बच्चे; कायम्—अपने शरीर को; निधाय—रखकर; भुवि—भूमि पर; भूत-पतिम्—समस्त प्राणियों के स्वामी को; प्रणेमुः—प्रणाम किया; साध्यः—साध्वी स्त्रियाँ; कृत-अञ्जलि-पुटाः—हाथ जोड़कर; शमलस्य—पापी; भर्तुः—पति की; मोक्ष—मुक्ति; ईप्सवः—इच्छा करती हुई; शरण-दम्—शरण देनेवाले; शरणम्—शरण के लिए; प्रपन्नाः—निकट आईं।

अत्यन्त उद्विग्नमना उन साध्वी स्त्रियों ने अपने बच्चों को अपने आगे कर लिया और तब समस्त प्राणियों के स्वामी के समक्ष भूमि पर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। वे अपने पापी पति का मोक्ष एवं परम शरणदाता भगवान् की शरण चाहती थीं अतः नम्रता से हाथ जोड़े हुए वे उनके निकट आईं।

नागपत्न्य ऊचुः
 न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मि-
 स्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
 रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टि-
 र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

नाग-पत्न्यः ऊचुः—नाग की पत्नियों ने कहा; न्याय्यः—सही न्यायपूर्ण; हि—निस्सन्देह; दण्डः—दण्ड, सजा; कृत-
 किल्बिषे—अपराध करनेवाले के लिए; अस्मिन्—इस व्यक्ति ने; तव—आपका; अवतारः—अवतार; खल—दुष्टों के;
 निग्रहाय—दमन के लिए; रिपोः—शत्रु पर; सुतानाम्—अपने ही पुत्रों पर; अपि—भी; तुल्य-दृष्टिः—समान दृष्टि रखनेवाला;
 धत्से—आप देते हैं; दमम्—दंड; फलम्—फल; एव—निस्सन्देह; अनुशंसम्—विचार करते हुए।

कालिय सर्प की पत्नियों ने कहा : इस अपराधी को जो दण्ड मिला है, वह निस्संदेह उचित ही है। आपने इस जगत में ईर्ष्यालु तथा क्रूर पुरुषों का दमन करने के लिए ही अवतार लिया है। आप इतने निष्पक्ष हैं कि आप शत्रुओं तथा अपने पुत्रों को समान भाव से देखते हैं क्योंकि जब आप किसी जीव को दण्ड देते हैं, तो आप यह जानते होते हैं कि अन्ततः यह उसके हित के लिए है।

अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो
 दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ।
 यद्दन्द्शूकत्वममुष्य देहिनः
 क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अनुग्रहः—कृपा; अयम्—यह; भवतः—आपके द्वारा; कृतः—की गई; हि—निस्सन्देह; नः—हम पर; दण्डः—दण्ड, सजा;
 असताम्—दुष्टों का; ते—आपके द्वारा; खलु—निस्सन्देह; कल्मष-अपहः—उनके कल्मष को दूर करते हुए; यत्—क्योंकि;
 दन्दशूकत्वम्—सर्प के रूप में प्रकट होने की अवस्था; अमुष्य—इस कालिय की; देहिनः—बद्धजीव; क्रोधः—क्रोध; अपि—
 भी; ते—आपकी; अनुग्रहः—कृपा; एव—वास्तव में; सम्मतः—स्वीकार है।

आपने जो कुछ यहाँ किया है, वह वास्तव में हम पर अनुग्रह है क्योंकि आप दुष्टों को जो दण्ड देते हैं वह निश्चित रूप से उनके कल्मष को दूर कर देता है। चूँकि यह बद्धजीव हमारा पति इतना पापी है कि इसने सर्प का शरीर धारण किया है अतएव उसके प्रति आपका यह क्रोध उसके प्रति आपकी कृपा ही समझी जानी चाहिए।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील मध्वाचार्य इंगित करते हैं कि जब इस जगत में कोई पवित्र व्यक्ति कष्ट भोगता है, तो वह यह अनुभव करता है कि, “ भगवान् द्वारा दिया जाने वाला यह दण्ड वास्तव में

उनकी अहैतुकी कृपा है।” किन्तु ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने शुद्धिकरण के हेतु दण्डित होने पर भी भगवान् से ईर्ष्या करना नहीं छोड़ते और आक्रोश से भरे रहते हैं। इसी मनोभाव के कारण वे परम ब्रह्म को नहीं समझ पाते।

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं
निरस्तमानेन च मानदेन ।
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया
यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; सु-तप्तम्—ठीक से की गई; किम्—क्या; अनेन—इस कालिय द्वारा; पूर्वम्—पूर्वजन्मों में; निरस्त-मानेन—मिथ्या अहंकार से रहित होने से; च—तथा; मान-देन—अन्यों का सम्मान करते हुए; धर्मः—धार्मिक कर्तव्य; अथ वा—या अन्य कुछ; सर्व-जन—सभी लोगों के लिए; अनुकम्पया—अनुकम्पापूर्वक; यतः—जिससे; भवान्—आप; तुष्यति—प्रसन्न होते हैं; सर्व-जीवः—समस्त जीवों के प्राणाधार।

क्या हमारे पति ने पूर्वजन्म में गर्वरहित होकर तथा अन्यों के प्रति आदरभाव से पूरित होकर सावधानी से तपस्या की थी? क्या इसीलिए आप उससे प्रसन्न हैं? अथवा क्या उसने किसी पूर्वजन्म में समस्त जीवों के प्रति दयापूर्वक धार्मिक कर्तव्य पूरा किया था और क्या इसीलिए समस्त जीवों के प्राणाधार आप अब उससे सन्तुष्ट हैं?

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण (भाग १, अध्याय १६) में इस तरह टीका की है, “नागपत्नियाँ इसकी पुष्टि करती हैं कि जब तक किसी ने अपने पूर्वजन्मों में भक्ति द्वारा पुण्यकर्म नहीं किये होते, वह कृष्ण के सम्पर्क में नहीं आ सकता। जैसाकि भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में उपदेश दिया है—मनुष्य को चाहिए कि अपने को मार्ग के तृण से भी नीचे समझते हुए तथा अपने सम्मान की आशा न रखते हुए अन्यों का सभी प्रकार सम्मान करते हुए हरे कृष्ण मंत्र का विनम्र होकर कीर्तन करते हुए भक्ति करे। नागपत्नियाँ विस्मित थीं कि यद्यपि अत्यन्त पापपूर्ण कृत्यों के कारण कालिय को सर्प का शरीर मिला था किन्तु अब उसके फनों पर भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श हो रहा है। निश्चय ही यह किसी सामान्य पुण्यकर्म का फल नहीं था। ये दो विरोधी तथ्य उन्हें विस्मित कर रहे थे।”

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे

तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

कस्य—किसका; अनुभावः—फल; अस्य—इस सर्प का; न—नहीं; देव—हे प्रभु; विद्वाहे—हम जानती हैं; तव—आपके; अङ्घ्रि—चरणकमलों की; रेणु—धूलि का; स्पर्श—स्पर्श करने के लिए; अधिकारः—पात्रता, योग्यता; यत्—जिसके लिए; वाञ्छया—इच्छा से; श्रीः—लक्ष्मीजी ने; ललना—(सर्वश्रेष्ठ) स्त्री; आचरत्—सम्पन्न की; तपः—तपस्या; विहाय—छोड़कर; कामान्—सारी इच्छाओं को; सु-चिरम्—दीर्घकाल तक; धृत—धारण किया; व्रता—अपना व्रत, प्रतिज्ञा ।

हे प्रभु, हम नहीं जानतीं कि इस कालिय नाग ने किस तरह आपके चरणकमलों की धूल को स्पर्श करने का सुअवसर प्राप्त किया। इसके लिए तो लक्ष्मीजी ने अन्य सारी इच्छाएँ त्यागकर कठोर व्रत धारण करके सैकड़ों वर्षों तक तपस्या की थी।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; नाक-पृष्ठम्—स्वर्ग; न च—न तो; सार्व-भौमम्—सर्वोपरि सत्ता; न—नहीं; पारमेष्ठ्यम्—ब्रह्मा का सर्वोच्च पद; न—नहीं; रस-अधिपत्यम्—पृथ्वी के ऊपर शासन; न—नहीं; योग-सिद्धीः—योग की सिद्धियाँ; अपुनः-भवम्—पुनर्जन्म से छुटकारा; वा—अथवा; वाञ्छन्ति—इच्छा करते हैं; यत्—जिसके; पाद—चरणकमलों की; रजः—धूल; प्रपन्नाः—जिन्होंने प्राप्त कर ली है।

जिन्होंने आपके चरणकमलों की धूल प्राप्त कर ली है वे न तो स्वर्ग का राज्य, न असीम वर्चस्व, न ब्रह्मा का पद, न ही पृथ्वी का साम्राज्य चाहते हैं। उन्हें योग की सिद्धियों अथवा मोक्ष तक में कोई रुचि नहीं रहती।

तदेष नाथाप दुरापमन्यै-
स्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो
यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; एषः—यह कालिय; नाथ—हे प्रभु; आप—प्राप्त कर चुका है; दुरापम्—दुष्प्राप्य; अन्यैः—अन्यों के द्वारा; तमः-जनिः—तमोगुण में उत्पन्न; क्रोध-वशः—क्रोध के वशीभूत; अपि—भी; अहि-ईशः—सर्पराज; संसार-चक्रे—संसार के चक्र में; भ्रमतः—घूमता हुआ; शरीरिणः—जीवधारियों के लिए; यत्—जिससे (चरणों की धूल से); इच्छतः—भौतिक इच्छाओं वाला; स्यात्—प्रकट करता है; विभवः—सारे ऐश्वर्य; समक्षः—अपने सामने।

हे प्रभु, यद्यपि इस सर्पराज कालिय का जन्म तमोगुण में हुआ है और यह क्रोध के वशीभूत

है किन्तु इसने अन्यो के लिए जो दुष्प्राप्य है उसे भी प्राप्त कर लिया है। इच्छाओं से पूर्ण होकर जन्म-मृत्यु के चक्र में भ्रमण करनेवाले देहधारी जीव आपके चरणकमलों की धूल प्राप्त करने से ही अपने समक्ष सारे आशीर्वादों को प्रकट होते देख सकते हैं।

तात्पर्य : बद्धजीव के लिए अपने आपको मोह के कल्मष से छुड़ाकर परब्रह्म की पूर्ण चेतना को प्राप्त कर पाना अत्यन्त दुर्लभ है। तो भी कालिय को यह आशीर्वाद प्राप्त हो सका क्योंकि भगवान् ने अपने चरणकमलों से उस सर्प के फणों पर स्वयं नृत्य किया। भले ही हम बद्धजीवों को अपने सिर पर भगवान् के नृत्य होने की कृपा प्राप्त न हो सके किन्तु भगवान् के प्रतिनिधि, प्रामाणिक गुरु, के माध्यम से ब्रह्म के चरणकमलों की धूल तो प्राप्त हो ही सकती है। इस तरह ब्रह्माण्ड के कष्ट तथा अज्ञान से हमेशा के लिए मुक्त होकर हम भगवद्धाम वापस जा सकते हैं।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।

भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—आपको; भगवते—भगवान्; पुरुषाय—परमात्मा रूप में भीतर उपस्थित; महा-आत्मने—सर्वव्यापी; भूत-आवासाय—भौतिक तत्त्वों (क्षिति, जल, पावक इत्यादि) के आश्रय रूप; भूताय—सृष्टि के भी पूर्व से विद्यमान; पराय—परम कारण को; परम-आत्मने—भौतिक कारणों से परे।

हे भगवन्, हम आपको सादर नमस्कार करती हैं। यद्यपि आप सभी जीवों के हृदयों में परमात्मा रूप में स्थित हैं, तो भी आप सर्वव्यापक हैं। यद्यपि आप सभी उत्पन्न भौतिक तत्त्वों के आदि आश्रय हैं किन्तु आप उनके सृजन के पूर्व से विद्यमान हैं। यद्यपि आप हर वस्तु के कारण हैं किन्तु परमात्मा होने से आप भौतिक कार्य-कारण से परे हैं।

तात्पर्य : वक्ता तथा श्रोता के दिव्य आनन्द हेतु इस सुन्दर संस्कृत श्लोक का जोर से उच्चारण करना चाहिए।

ज्ञानविज्ञाननीधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।

अगुणायविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

ज्ञान—चेतना; विज्ञान—तथा आध्यात्मिक शक्ति के; निधये—सागर का; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; अनन्त-शक्तये—असीम शक्तिमान को; अगुणाय—द्रव्य के गुणों से न प्रभावित होनेवाले को; अविकाराय—भौतिक विकार न होनेवाले को; नमः—नमस्कार; ते—आपको; प्राकृताय—प्रकृति के आदि संचालक; च—तथा।

हे परम सत्य, हम आपको नमस्कार करती हैं। आप समस्त दिव्य चेतना एवं शक्ति के आगार हैं और अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं। यद्यपि आप भौतिक गुणों एवं विकारों से पूर्णतया मुक्त हैं किन्तु आप भौतिक प्रकृति के आदि संचालक हैं।

तात्पर्य : जो लोग अपने को बौद्धिक, दार्शनिक या मिलनसार मानते हैं उन्हें यह ध्यानपूर्वक जान लेना चाहिए कि परम सत्य या भगवान् समस्त ज्ञान तथा चेतना के सागर हैं। अतएव भगवान् की शरण जाने का अर्थ यह नहीं है कि अपनी मिलनसारी को त्याग दिया जाय। प्रत्युत इससे तो मनुष्य मिलनसार तर्कपूर्ण ज्ञान के सागर में लीन होता है। भगवान् समस्त ज्ञान तथा विज्ञान की सिद्धि हैं। केवल ईर्ष्यालु तथा क्षुद्राशय व्यक्ति ही इस स्पष्ट बात से इनकार करेंगे।

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कालाय—काल को; काल-नाभाय—काल के आश्रय को; काल-अवयव—काल की विभिन्न अवस्थाओं के; साक्षिणे—गवाह को; विश्वाय—विश्व रूप को; तद्-उपद्रष्ट्रे—इसके प्रेक्षक को; तत्-कर्त्रे—इसके स्रष्टा को; विश्व—विश्व के; हेतवे—सम्पूर्ण कारण को।

हम आपको नमस्कार करती हैं। आप साक्षात् काल, काल के आश्रय तथा काल की विभिन्न अवस्थाओं के साक्षी हैं। आप ब्रह्माण्ड हैं और इसके पृथक् द्रष्टा भी हैं। आप इसके स्रष्टा हैं और इसके समस्त कारणों के कारण हैं।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं किन्तु उन्हें काल के द्वारा बाँधा नहीं जा सकता क्योंकि वे स्वयं काल, काल के आश्रय तथा काल की विभिन्न अवस्थाओं के साक्षी हैं।

भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ।
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

भूत—भौतिक तत्त्वों के; मात्र—अनुभूति के सूक्ष्म आधार; इन्द्रिय—इन्द्रियों; प्राण—प्राणवायु; मनः—मन; बुद्धि—बुद्धि; आशय—तथा भौतिक चेतना के; आत्मने—परमात्मा में; त्रि-गुणेन—तीन गुणों से; अभिमानेन—झूठी पहचान से; गूढ—आच्छन्न; स्व—निज; आत्म—अपनी; अनुभूतये—अनुभूति को; नमः—नमस्कार; अनन्ताय—अनन्त भगवान् को; सूक्ष्माय—

अत्यन्त सूक्ष्म को; कूट-स्थाय—केन्द्र में स्थिर; विपश्चिते—सर्वज्ञ को; नाना—विविध; वाद—दर्शन के; अनुरोधाय—स्वीकृति प्रदाता को; वाच्य—व्यक्त विचारों के; वाचक—तथा व्यक्त शब्द; शक्तये—शक्तिमान को।

आप भौतिक तत्त्वों के, अनुभूति के सूक्ष्म आधार के, इन्द्रियों के, प्राणवायु के तथा मन, बुद्धि एवं चेतना के परमात्मा हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं। आपकी ही व्यवस्था के फलस्वरूप सूक्ष्मतम चिन्मय आत्माएँ प्रकृति के तीनों गुणों के रूप में अपनी झूठी पहचान बनाती हैं फलस्वरूप उनकी स्व की अनुभूति प्रच्छन्न हो जाती है। हे अनन्त भगवान्, हे परम सूक्ष्म एवं सर्वज्ञ भगवान्, हम आपको प्रणाम करती हैं, जो सदैव स्थायी दिव्यता में विद्यमान रहते हैं, विभिन्न वादों के विरोधी विचारों को स्वीकृति देते हैं और व्यक्त विचारों तथा उनको व्यक्त करनेवाले शब्दों को प्रोत्साहन देने वाली शक्ति हैं।

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।

प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; प्रमाण—आधिकारिक साक्ष्य के; मूलाय—आधार को; कवये—लेखक को; शास्त्र—शास्त्र के; योनये—स्रोत को; प्रवृत्ताय—इन्द्रिय तृप्ति के लिए प्रोत्साहित करनेवाले को; निवृत्ताय—त्याग के प्रति प्रोत्साहित करनेवाले को; निगमाय—दोनों प्रकार के शास्त्रों के उद्गम को; नमः नमः—बारम्बार नमस्कार।

समस्त प्रमाणों के आधार, शास्त्रों के प्रणेता तथा परम स्रोत, इन्द्रिय तृप्ति को प्रोत्साहित करनेवाले (प्रवृत्ति मार्ग) तथा भौतिक जगत से विराग उत्पन्न करनेवाले वैदिक साहित्य में अपने को प्रकट करनेवाले आपको हम बारम्बार नमस्कार करती हैं।

तात्पर्य : यदि हममें अनुभूति तथा संज्ञान की शक्तियाँ न होतीं तो प्रमाण का प्रेषण न हो पाता और यदि हम प्रमाण के विशिष्ट गुणों में विश्वास न करते होते तो विश्वसनीयता न हो पाती। इस तरह अनुभूति, संज्ञान, विश्वास तथा प्रेषण—ये सारी विधियाँ भगवान् की विविध शक्तियों द्वारा ही घटित होती हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण स्वयं महानतम पंडित तथा बुद्धिमान पंडित हैं। वे ब्रह्मा तथा नारद जैसे महाभागवतों के हृदयों के भीतर दिव्य शास्त्रों को प्रकट करते हैं और समस्त वैदिक ज्ञान के रचयिता वेदव्यास के रूप में भी अवतरित होते हैं। भगवान् नाना प्रकार से धार्मिक शास्त्रों को उत्पन्न करते हैं, जिससे बद्धजीव विभिन्न स्थितियों में से गुजरने के पश्चात् क्रमशः भगवद्धाम वापस जाते हैं।

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; कृष्णाय—भगवान् कृष्ण को; रामाय—भगवान् राम को; वसुदेव-सुताय—वसुदेव के पुत्र; च—तथा; प्रद्युम्नाय—भगवान् प्रद्युम्न को; अनिरुद्धाय—अनिरुद्ध को; सात्वताम्—भक्तों के; पतये—स्वामी को; नमः—नमस्कार।

हम वसुदेव के पुत्र, भगवान् कृष्ण तथा भगवान् राम को और भगवान् प्रद्युम्न तथा भगवान् अनिरुद्ध को सादर नमस्कार करती हैं। हम विष्णु के समस्त सन्त सदृश भक्तों के स्वामी को सादर नमस्कार करती हैं।

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ।

गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; गुण-प्रदीपाय—विभिन्न गुणों को प्रकट करनेवाले को; गुण—भौतिक गुणों से; आत्म—स्वयं; छादनाय—वेश बदलनेवाले को; च—तथा; गुण—गुणों के; वृत्ति—कार्य करने से; उपलक्ष्याय—सुनिश्चित किये जा सकने वाले को; गुण-द्रष्ट्रे—गुणों के पृथक् साक्षी को; स्व—अपने भक्तों को; संविदे—ज्ञात।

नाना प्रकार के भौतिक तथा आध्यात्मिक गुणों को प्रकट करनेवाले, हे भगवन्, आपको हमारा नमस्कार। आप अपने को भौतिक गुणों से छिपा लेते हैं किन्तु अन्ततः उन्हीं भौतिक गुणों के अन्तर्गत हो रहे कार्य आपके अस्तित्व को प्रकट कर देते हैं। आप साक्षी रूप में भौतिक गुणों से पृथक् रहते हैं और एकमात्र अपने भक्तों द्वारा भलीभाँति ज्ञेय हैं।

तात्पर्य : गुण के अनेक अर्थ हैं—प्रकृति के तीन गुण—सतो, रजो तथा तमोगुण; शुद्धता तथा आध्यात्मिक उन्नति के कारण प्रकट किये गये उत्तम गुण; अथवा मन, बुद्धि जैसी आन्तरिक इन्द्रियाँ। प्रदीपाय का अर्थ है “प्रकट होनेवाले या प्रकाश करनेवाले को।” इस तरह नागपत्नियाँ यहाँ पर भगवान् को सम्बोधित कर रही हैं कि आप समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक गुणों को प्रकट करनेवाले हैं एवं जीवों को चेतन बनानेवाले हैं। कोई भी व्यक्ति भौतिक प्रकृति के पर्दे से ऊपर उठकर ही भगवान् का दर्शन कर सकता है इसीलिए उन्हें गुणात्मच्छादनाय कहा गया है। यदि कोई विधिवत् तथा बुद्धिमानी के साथ भौतिक गुणों की कार्यप्रणाली का अध्ययन करे तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि भगवान् का अस्तित्व है और वे अपनी मायाशक्ति उन्हीं को चकराने के लिए दिखलाते हैं, जो उनकी शरण ग्रहण नहीं करता।

चूँकि भगवान् गुणों के साक्षी हैं अतएव वे इनसे कभी प्रभावित नहीं होते। वे गुण-द्रष्ट्रे कहलाते

हैं। स्व का अर्थ “अपने ही” है, अतः स्व-संविदे का अर्थ है कि भगवान् कृष्ण अपने ही लोगों— भक्तों—द्वारा जाने जा सकते हैं और केवल भगवान् ही अपने आपको भलीभाँति जान सकते हैं। अतएव हमें भगवद्गीता में दिये गये कृष्ण के उपदेशों को ग्रहण करके इस सही निष्कर्ष—भगवान् के चरणकमलों पर पूर्ण समर्पण—पर पहुँचना चाहिए। इस तरह हमें नागपत्नियों के उदाहरण का पालन करते हुए भगवान् का विनीत भाव से गुणगान करना चाहिए।

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।

हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

अव्याकृत-विहाराय—अगाध महिमा वाले; सर्व-व्याकृत—सभी वस्तुओं के सृजन तथा प्राकट्य; सिद्धये—अस्तित्व वाले को; हृषीक-ईश—हे इन्द्रियों के प्रेरक; नमः—नमस्कार; ते—आपको; अस्तु—होए; मुनये—मौन रहनेवाले को; मौन-शीलिने—मौन अवस्था में ही कर्म करनेवाले को।

हे इन्द्रियों के स्वामी, हृषीकेश, हम आपको नमस्कार करती हैं क्योंकि आपकी लीलाएँ अचिन्त्य रूप से महिमामयी हैं। आपके अस्तित्व को समस्त दृश्य जगत के लिए स्रष्टा तथा प्रकाशक की आवश्यकता से समझा जा सकता है। यद्यपि आपके भक्त आपको इस रूप में समझ सकते हैं किन्तु अभक्तों के लिए आप आत्मलीन रह कर मौन बने रहते हैं।

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ।

अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

पर-अवर—उत्तम तथा निकृष्ट दोनों ही तरह की वस्तुओं के; गति—गन्तव्य; ज्ञाय—जाननेवाले को; सर्व—सभी वस्तुओं के; अध्यक्षाय—नियन्ता को; ते—आपको; नमः—हमारा नमस्कार; अविश्वाय—ब्रह्माण्ड से पृथक् रहनेवाले को; च—तथा; विश्वाय—भौतिक जगत की माया प्रकट करनेवाले को; तद्-द्रष्ट्रे—ऐसी माया के साक्षी को; अस्य—इस जगत के; च—तथा; हेतवे—मूल कारण को।

उत्तम तथा अधम समस्त वस्तुओं के गन्तव्य को जाननेवाले तथा समस्त जगत के अध्यक्ष नियन्ता आपको हमारा नमस्कार। आप इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि से पृथक् हैं फिर भी आप वह मूलाधार हैं जिस पर भौतिक सृष्टि की माया का विकास होता है। आप इस माया के साक्षी भी हैं। निस्सन्देह आप अखिल जगत के मूल कारण हैं।

तात्पर्य : पर तथा अवर शब्द उत्तम सूक्ष्म तत्त्वों तथा निकृष्ट स्थूल तत्त्वों का बोध करानेवाले हैं। ये शब्द उत्तम पुरुषों अर्थात् भगवद्भक्तों तथा उन निकृष्ट पुरुषों के भी सूचक हैं, जो भगवान् की

महिमा से अनजान होते हैं। भगवान् कृष्ण समस्त उत्तम तथा निकृष्ट जीवों एवं चराचर के भाग्य को जानते हैं और परब्रह्म के रूप में वे सबों के ऊपर अपने अनन्य पद पर बने रहते हैं जैसाकि *सर्वाध्यक्षाय* शब्द से इंगित होता है।

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो
गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ।
तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः
समीक्षयामोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; हि—निस्सन्देह; अस्य—इस ब्रह्माण्ड के; जन्म-स्थिति-संयमान्—सृजन, पालन तथा संहार; विभो—हे सर्वशक्तिमान्; गुणैः—प्रकृति के गुणों द्वारा; अनीहः—किसी भी भौतिक प्रयास में निहित न होते हुए भी; अकृत—अनादि; काल-शक्ति—काल की शक्ति के; धृक्—धारण करनेवाले; तत्-तत्—प्रत्येक गुण के; स्व-भावान्—लक्षणों को; प्रतिबोधयन्—जाग्रत करते हुए; सतः—सुप्त अवस्था में रह रहे; समीक्षया—अपनी चितवन से; अमोघ-विहारः—अमोघ क्रीड़ाओं वाले; ईहसे—आप कर्म करते हैं।

हे सर्वशक्तिमान प्रभु, यद्यपि आपके भौतिक कर्म में फँसने का कोई कारण नहीं है, फिर भी आप इस ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार की व्यवस्था करने के लिए अपनी शाश्वत कालशक्ति के माध्यम से कर्म करते हैं। इसे आप सृजन के पूर्व सुप्त पड़े प्रकृति के प्रत्येक गुण के विशिष्ट कार्य को जाग्रत करते हुए सम्पन्न करते हैं। ब्रह्माण्ड-नियंत्रण के इन सारे कार्यों को आप खेल खेल में केवल अपनी चितवन से पूर्णतया सम्पन्न कर देते हैं।

तात्पर्य : संशयवादी प्रश्न कर सकते हैं कि परमेश्वर ने जन्म, पालन तथा मृत्यु से भरी-पूरी भौतिक जगत की सृष्टि क्यों की। यहाँ पर नागपत्नियाँ संकेत करती हैं कि भगवान् की लीलाएँ अमोघ अर्थात् त्रुटि-रहित हैं। वास्तव में कृष्ण यही चाहते हैं कि सारे बद्धजीव उनके साथ उनके दिव्य धाम में रहें किन्तु वे भुलकण्ड जीवात्माएँ जो ईश्वर के इस प्रेम-सम्बन्ध को द्वेष की दृष्टि से देखती हैं उन्हें भौतिक जगत में जाना पड़ता है और काल की स्थितियाँ भोगनी पड़ती हैं। भाग्यशाली बद्धजीवों को भगवान् के प्रिय सेवकों के रूप में अपने वास्तविक पद का स्मरण कराकर सतर्क कर दिया जाता है, तो भगवान् उनके हृदय के भीतर से उन्हें भगवद्धाम वापस आने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जहाँ काल अनुपस्थित रहता है और जहाँ दृश्य जगत के सृजन तथा संहार जैसे विचलित करनेवाले नाटकीय कृत्य शाश्वत एवं आनन्दमय जगत द्वारा पछाड़ दिये जाते हैं।

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां

शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ।

शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुं सतां

स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तस्य—उनका; एव—निस्सन्देह; ते—आपका; अमूः—ये; तनवः—भौतिक शरीर; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; शान्ताः—शान्त (सतोगुण में); अशान्ताः—अशान्त (रजोगुण में); उत—और भी; मूढ-योनयः—अज्ञानी योनियों में उत्पन्न; शान्ताः—सतोगुणी शान्त व्यक्ति; प्रियाः—प्रिय; ते—आपको; हि—निश्चय ही; अधुना—अब; अवितुम्—रक्षा करने के लिए; सताम्—साधु भक्तों की; स्थातुः—उपस्थित; च—तथा; ते—आपके; धर्म—धर्म के सिद्धान्त; परीप्सया—पालन करने की इच्छा से; ईहतः—कार्य करनेवाला ।

इसलिए तीनों लोकों भर में सारे भौतिक शरीर—जो सतोगुणी होने के कारण शान्त हैं, जो रजोगुणी होने से विक्षुब्ध हैं तथा जो तमोगुणी होने से मूर्ख हैं—आपकी ही सृष्टियाँ हैं। तो भी जिनके शरीर सतोगुणी हैं, वे आपको विशेष रूप से प्रिय हैं और उन्हीं के पालन हेतु तथा उन्हीं के धर्म की रक्षा करने के लिए ही अब आप इस पृथ्वी पर विद्यमान हैं।

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ।

क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

अपराधः—अपराध; सकृत्—एक बार; भर्त्रा—स्वामी द्वारा; सोढव्यः—सहन किया जाना चाहिए; स्व-प्रजा—आपकी प्रजा द्वारा; कृतः—किया गया; क्षन्तुम्—सहने के लिए; अर्हसि—आपको शोभा देता है; शान्त-आत्मन्—हे शान्त रहनेवाले; मूढस्य—मूर्ख के; त्वाम्—आपको; अजानतः—न समझने वाला ।

स्वामी को चाहिए कि अपनी सन्तान या प्रजा द्वारा किये गये अपराध को कम से कम एक बार तो सह ले। इसलिए हे परम शान्त आत्मन्, आप हमारे इस मूर्ख पति को क्षमा कर दें जो यह नहीं समझ पाया कि आप कौन हैं।

तात्पर्य : अत्यधिक चिन्ता के कारण कालिय की पत्नियाँ इस श्लोक में एक ही भाव को—कि परमात्मा उनके मूर्ख पति को क्षमा कर दें—दो बार व्यक्त करती हैं। भगवान् परम शान्तात्मा हैं अतएव नागपत्नियाँ यह सुझाव देती हैं कि अज्ञानी कालिय द्वारा किये गये महान् अपराध को कम से कम इस बार क्षमा करना उनके लिए उपयुक्त होगा।

अनुगृहीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः ।

स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अनुगृहीष्व—कृपा करें; भगवन्—हे भगवान्; प्राणान्—प्राणों को; त्यजति—त्याग रहा है; पन्नगः—सर्प; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के लिए; नः—हम; साधु-शोच्यानाम्—साधु पुरुषों द्वारा क्षम्य; पतिः—पति; प्राणः—जीवन स्वरूप; प्रदीयताम्—वापस दे दिया जाय।

हे भगवन्, आप हम पर कृपालु हों। साधु पुरुष को हम-जैसी स्त्रियों पर दया करना उचित है। यह सर्प अपना प्राण त्यागने ही वाला है। कृपया हमारे जीवन तथा आत्मा रूप हमारे पति को हमें वापस कर दें।

विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ।

यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

विधेहि—आज्ञा दें; ते—आपकी; किङ्करीणाम्—दासियों द्वारा; अनुष्ठेयम्—जो किया जाना हो; तव—आपकी; आज्ञया—आज्ञा से; यत्—जो; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; अनुतिष्ठन्—सम्पन्न करते हुए; वै—निश्चय ही; मुच्यते—मुक्त हुआ जा सके; सर्वतः—सभी; भयात्—भय से।

अब कृपा करके अपनी दासियों को बतलायें कि हम क्या करें। यह निश्चित है कि जो भी आपकी आज्ञा को श्रद्धापूर्वक पूरा करता है, वह स्वतः सारे भय से मुक्त हो जाता है।

तात्पर्य : अब कालिय की पत्नियों का समर्पण पूर्ण हो चुका था और कृष्ण ने तुरन्त ही उन्हें अपनी कृपा प्रदान कर दी जैसाकि अगले श्लोकों में वर्णन हुआ है।

श्रीशुक उवाच

इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्समभिष्टुतः ।

मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाद्भ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस तरह; सः—उन भगवान् कृष्ण ने; नाग-पत्नीभिः—कालिय की पत्नियों द्वारा; भगवान्—भगवान् ने; समभिष्टुतः—पूरी तरह से प्रशंसित; मूर्च्छितम्—मूर्च्छित, बेहोश; भग्न-शिरसम्—कुचले हुए सिरवाले; विससर्ज—जाने दिया; अद्भ्रिकुट्टनैः—पाँवों के प्रहार से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह नागपत्नियों द्वारा प्रशंसित भगवान् ने उस कालिय सर्प को छोड़ दिया, जो मूर्च्छित होकर गिर चुका था और जिसके सिर भगवान् के चरणकमलों के प्रहार से क्षत-विक्षत हो चुके थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् कृष्ण अपने निर्णय पर पहुँचकर तुरन्त ही कालिय के फनों से नीचे कूद पड़े और सर्प तथा उसकी पत्नियों के समक्ष खड़े हो गये। हमें

स्मरण रखना चाहिए कि जब भगवान् कृष्ण ने ये लीलाएँ सम्पन्न कीं तो वे वृन्दावन के एक ग्रामीण बालक मात्र थे।

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ।

कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

प्रतिलब्ध—पुनः प्राप्त करके; इन्द्रिय—इन्द्रियों का कार्य; प्राणः—तथा अपनी जीवनी शक्ति; कालियः—कालिय; शनकैः—धीरे धीरे; हरिम्—भगवान्; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; समुच्छ्वसन्—तेजी से साँस लेता; दीनः—दुखी; कृष्णम्—कृष्ण से; प्राह—बोला; कृत-अञ्जलिः—विनीत होकर।

धीरे धीरे कालिय को अपनी जीवनी शक्ति तथा इन्द्रियों की क्रियाशीलता प्राप्त हो गई। तब कष्टपूर्वक जोर-जोर से साँस लेते हुए बेचारे सर्प ने विनीत भाव से भगवान् श्रीकृष्ण को सम्बोधित किया।

कालिय उवाच

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तमसा दीर्घमन्यवः ।

स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

कालियः उवाच—कालिय ने कहा; वयम्—हम; खलाः—दुष्ट; सह उत्पत्त्या—अपने जन्म से ही; तामसाः—तामसी प्रकृति के; दीर्घ-मन्यवः—निरन्तर क्रुद्ध; स्वभावः—स्वभाव; दुस्त्यजः—जिसे छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है; नाथ—हे स्वामी; लोकानाम्—सामान्य जनों के लिए; यत्—जिससे; असत्—असत्य तथा अशुद्ध की; ग्रहः—स्वीकृति।

कालिय नाग ने कहा : सर्प के रूप में जन्म से ही हम ईर्ष्यालु, अज्ञानी तथा निरन्तर क्रुद्ध बने हुए हैं। हे नाथ, मनुष्यों के लिए अपना बद्ध स्वभाव, जिससे वे असत्य से अपनी पहचान करते हैं, छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है।

तात्पर्य : सनातन गोस्वामी संकेत करते हैं कि अपनी दीन दशा के कारण ही कालिय भगवान् के लिए मौलिक स्तुतियाँ नहीं रच सका इसीलिए वह अपनी पत्नियों द्वारा की गई कुछ स्तुतियों का शब्दान्तरण कर रहा था। असद्ग्रह शब्द बतलाता है कि बद्धजीव अस्थायी तथा अशुद्ध वस्तुओं को ही दृढ़ता से पकड़ता है—यथा अपना शरीर, अन्यो के शरीर तथा नाना प्रकार के भौतिक इन्द्रिय विषय। ऐसी भौतिक आसक्ति का अन्तिम फल दुराशा, निराशा तथा क्रोध होता है, जो उस बेचारे सर्प कालिय को अब स्पष्ट हो चुका था।

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ।

नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

त्वया—आपके द्वारा; सृष्टम्—उत्पन्न; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; धातः—हे विधाता; गुण—भौतिक गुणों की; विसर्जनम्—विविध सृष्टि; नाना—विविध; स्व-भाव—स्वभाव; वीर्य—नाना प्रकार की शक्ति; ओजः—तथा शारीरिक शक्ति; योनि—गर्भ; बीज—बीज; आशय—मनोवृत्ति; आकृति—तथा रूप।

हे परम विधाता, आप ही भौतिक गुणों की विविध व्यवस्था से निर्मित इस ब्रह्माण्ड के बनाने वाले हैं। इस प्रक्रिया में आप नाना प्रकार के व्यक्तित्व तथा योनियाँ, नाना प्रकार की ऐन्द्रिय तथा शारीरिक शक्तियाँ तथा भाँति भाँति की मनोवृत्तियों एवं आकृतियों वाले माता-पिताओं को प्रकट करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील मध्वाचार्य ने नारद पुराण का यह उद्धरण दिया है “हिरण्यगर्भ ब्रह्मा से इस ब्रह्माण्ड की दुबारा सृष्टि होती है, परन्तु मूल सृष्टि तो साक्षात् विष्णु द्वारा ही की जाती है। इस प्रकार विष्णु मूल स्रष्टा हैं और चतुरानन मात्र केवल गौण स्रष्टा हैं।”

वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवः ।

कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; च—तथा; तत्र—उस भौतिक सृष्टि के भीतर; भगवन्—हे भगवन्; सर्पाः—सर्पगण; जाति—जाति, योनि; उरु-मन्यवः—अत्यन्त क्रोधी; कथम्—कैसे; त्यजामः—हम त्याग सकते हैं; त्वत्-मायाम्—आपकी मायाशक्ति को; दुस्त्यजाम्—जिसे त्याग पाना असम्भव है; मोहिताः—मोहित; स्वयम्—अपने आप।

हे भगवन्, आपकी भौतिक सृष्टि में जितनी भी योनियाँ हैं उनमें से हम सर्पगण स्वभाव से सदैव क्रोधी हैं। इस तरह आपकी दुस्त्यज मायाशक्ति से मुग्ध होकर भला हम उस स्वभाव को अपने आप कैसे त्याग सकते हैं?

तात्पर्य : कालिय यहाँ पर अप्रत्यक्ष रीति से भगवान् की कृपा की याचना कर रहा है क्योंकि उसे अनुभव हो रहा है कि वह अपने आप कभी भी मोह तथा कष्ट से मुक्त नहीं हो सकता। भगवान् की शरण में जाकर और उनकी कृपा प्राप्त करके ही कोई व्यक्ति भौतिक जीवन के कष्टों से छुटकारा पा सकता है।

भवान्नि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।

अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—आप; हि—निश्चय ही; कारणम्—कारण; तत्र—उस मामले में (मोह हटाने में); सर्व-ज्ञः—सबकुछ जाननेवाले; जगत्-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता; अनुग्रहम्—कृपा; निग्रहम्—दंड; वा—अथवा; मन्यसे—जो आप उचित समझें; तत्—वह; विधेहि—व्यवस्था करें; नः—हमारे लिए।

हे ईश्वर, ब्रह्माण्ड के सर्वज्ञ भगवान् होने के कारण आप मोह से छूटने के वास्तविक कारण हैं। कृपा करके आप जो भी उचित समझें, हमारे लिए व्यवस्था करें, चाहे हम पर कृपा करें या दण्ड दें।

श्रीशुक उवाच

इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः ।
नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ।
स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यते नदी ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आकर्ण्य—सुनकर; वचः—ये शब्द; प्राह—तब बोले; भगवान्—भगवान्; कार्य-मानुषः—मनुष्य जैसे कार्य करनेवाले; न—नहीं; अत्र—यहाँ; स्थेयम्—ठहरना चाहिए; त्वया—तुमको; सर्प—हे सर्प; समुद्रम्—समुद्र में; याहि—जाओ; मा चिरम्—बिना देरी किये; स्व—अपने; ज्ञाति—साथियों के द्वारा; अपत्य—बच्चे; दार—तथा पत्नी को; आढ्यः—साथ लेकर; गो—गौवों के द्वारा; नृभिः—तथा मनुष्यों द्वारा; भुज्यते—भोगी जाने दो; नदी—यमुना नदी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कालिय के शब्द सुनकर मनुष्य की भूमिका सम्पन्न कर रहे भगवान् ने उत्तर दिया: हे सर्प, अब तुम और अधिक यहाँ मत रुको। तुरन्त ही अपने बच्चों, पत्नियों, अन्य मित्रों तथा सम्बन्धियों समेत समुद्र में लौट जाओ। अब इस नदी को गौवों तथा मनुष्यों द्वारा भोगी जाने दो।

य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ।

कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; एतत्—इसे; संस्मरेत्—स्मरण करता है; मर्त्यः—प्राणी; तुभ्यम्—तुमको; मत्—मेरा; अनुशासनम्—आदेश; कीर्तयन्—कीर्तन करते हुए; उभयोः—दोनों; सन्ध्योः—दिन के सन्धिकालों पर; न—नहीं; युष्मत्—तुमसे; भयम्—भय; आप्नुयात्—प्राप्त करता है।

यदि कोई व्यक्ति तुम्हें दिये गये मेरे इस आदेश का (वृन्दावन छोड़कर समुद्र में जाने का) स्मरण करता है और प्रातः तथा संध्या समय इस कथा को बाँचता है, तो वह तुमसे कभी भयभीत नहीं होगा।

योऽस्मिन्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ।
उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; अस्मिन्—इस में (यमुना नदी के कालिय सरोवर में); स्नात्वा—स्नान करके; मत्-आक्रीडे—मेरी लीला के स्थान पर; देव-आदीन्—देवतागण तथा अन्य पूज्य व्यक्ति को; तर्पयेत्—तृप्त करता है; जलैः—(सरोवर के) जल से; उपोष्य—उपवास रखकर; माम्—मुझको; स्मरन्—स्मरण करते हुए; अर्चेत्—पूजा करता है; सर्व-पापैः—सारे पापों से; प्रमुच्यते—छूट जाता है ।

यदि कोई व्यक्ति मेरी क्रीड़ा के इस स्थल पर स्नान करता है और इस सरोवर का जल देवताओं तथा अन्य पूज्य पुरुषों को अर्पित करता है अथवा यदि कोई उपवास करता है, मेरी पूजा करता है और मेरा स्मरण करता है, तो वह समस्त पापों से अवश्य छूट जाएगा ।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार, भगवान् ने यह श्लोक कालिय को यह स्पष्ट करने के लिए कहा कि वह किसी भी हालत में यमुना के सरोवर में रह नहीं सकता था । यद्यपि भगवान् ने कृपापूर्वक सर्प को क्षमा दान दे दिया था और उसको अपने सभी साथियों समेत समुद्र में जाने का आदेश दे दिया था, कालिय को भूलकर भी उस सरोवर में रहने की प्रार्थना नहीं करनी चाहिए क्योंकि आध्यात्मिक यात्रियों के लिए इसे अब पवित्र तीर्थ स्थल बनना था ।

द्वीपं रमणकं हित्वा हृदमेतमुपाश्रितः ।
यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

द्वीपम्—द्वीप को; रमणकम्—रमणक नामक; हित्वा—त्यागकर; हृदम्—छोटे सरोवर को; एतम्—इस; उपाश्रितः—शरण लिए हुए; यत्—जिसके; भयात्—भय से; सः—वह; सुपर्णः—गरुड़; त्वाम्—तुम्हें; न अद्यात्—नहीं खायेगा; मत्-पाद—मेरे चरणों से; लाञ्छितम्—अंकित ।

तुम गरुड़ के भय से रमणक द्वीप छोड़कर इस सरोवर में शरण लेने आये थे । किन्तु अब तुम्हारे ऊपर मेरे चरणचिन्ह अंकित होने से, गरुड़ तुम्हें खाने का प्रयास कभी नहीं करेगा ।

श्रीऋषिरुवाच

मुक्तो भगवता राजन्कृष्णोनाद्भुतकर्मणा ।
तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—ऋषि (शुकदेव) ने कहा; मुक्तः—मुक्त; भगवता—भगवान् द्वारा; राजन्—हे राजा परीक्षित; कृष्णो—कृष्ण के द्वारा; अद्भुत-कर्मणा—अद्भुत कार्यकलाप वाले; तम्—उनकी; पूजयाम् आस—पूजा की; मुदा—हर्षपूर्वक; नाग—सर्प की; पत्न्यः—पत्नियों ने; च—तथा; स-आदरम्—आदरपूर्वक ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजन्, अद्भुत कार्यकलाप वाले भगवान् कृष्ण के

द्वारा छोड़े जाने पर कालिय नाग ने अपनी पत्नियों का बड़े ही हर्ष तथा आदर के साथ उनकी पूजा करने में साथ दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : अद्भुत-कर्मणा शब्द भगवान् के द्वारा कालिय से वृन्दावनवासियों की रक्षा, गरुड़ से कालिय को बचाना तथा हिंसा करनेवाले और हिंसा किये जानेवाले दोनों पर ही कृपा करना—जैसे अद्भुत कार्यकलापों को इंगित करता है। कृष्णेन शब्द “कृष्ण के द्वारा” यह सूचित करता है कि क्योंकि कालिय की पत्नियाँ कृष्ण की महान् भक्त थीं और उन्हें अत्यधिक स्नेह प्रदान किया था इसलिए कृष्ण ने भगवद्भक्त गरुड़ के प्रति तथा अपने प्रिय वृन्दावनवासियों के प्रति कालिय द्वारा किये गये अपराधों को वापस ले लिया (कर्षणम्)।

दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्थैरपि भूषणैः ।
दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ।
पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ६५ ॥
ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्य तम् ।
सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमध्येर्जगाम ह ॥ ६६ ॥
तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत् ।
अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ

दिव्य—दैवी; अम्बर—वस्त्र; स्रक्—माला; मणिभिः—तथा मणियों से; पर-अर्थैः—अत्यन्त मूल्यवान्; अपि—भी; भूषणैः—आभूषणों से; दिव्य—दैवी; गन्ध—सुगन्धि; अनुलेपैः—तथा लेप से; च—तथा; महत्या—सुन्दर; उत्पल—कमल की; मालया—माला से; पूजयित्वा—पूजकर; जगत्-नाथम्—जगत के स्वामी को; प्रसाद्य—तुष्ट करके; गरुड-ध्वजम्—जिसकी ध्वजा में गरुड़ चिह्न अंकित है, उसे; ततः—तब; प्रीतः—सुख का अनुभव करते हुए; अभ्यनुज्ञातः—जाने की अनुमति दिया जाकर; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; तम्—उन्हें; स—सहित; कलत्र—अपनी पत्नी; सुहृत्—मित्रगण; पुत्रः—तथा बच्चे; द्वीपम्—द्वीप को; अब्धेः—समुद्र में; जगाम—चला गया; ह—निस्सन्देह; तदा एव—उसी क्षण; स-अमृत—अमृत तुल्य; जला—जल वाली; यमुना—यमुना नदी; निर्विषा—विष से रहित; अभवत्—हो गई; अनुग्रहात्—कृपा से; भगवतः—भगवान् की; क्रीडा—क्रीड़ाओं के लिए; मानुष—मनुष्य जैसा; रूपिणः—रूप धारण करके।

कालिय ने सुन्दर वस्त्र, मालाएँ, मणियाँ तथा अन्य मूल्यवान् आभूषण, दिव्य सुगन्धियाँ तथा लेप और कमलफूलों की बड़ी माला भेंट करते हुए जगत के स्वामी की पूजा की। इस तरह गरुड़-ध्वज भगवान् को प्रसन्न करके कालिय को सन्तोष हुआ। जाने की अनुमति पाकर कालिय ने उनकी परिक्रमा की और उन्हें नमस्कार किया। तब अपनी पत्नियों, मित्रों तथा बच्चों को साथ लेकर वह समुद्र में स्थित अपने द्वीप चला गया। कालिय के जाते ही यमुना नदी अपने

मूल रूप में, विष से विहीन तथा अमृतोपम जल से पूर्ण हो गई। यह सब उन भगवान् की कृपा से सम्पन्न हुआ जो अपनी लीलाओं का आनन्द मनाने के लिए मनुष्य के रूप में प्रकट हुए थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की विशद टीका की है। *मणिभिः* शब्द की व्याख्या करने के लिए आचार्य ने रूप गोस्वामी कृत *श्री राधा-कृष्ण गणोद्देश दीपिका* से निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

कौस्तुभाख्यो मणिर्येन प्रविश्य हृदमौरगम्।

कालियप्रेयसिवृन्दहस्तैरात्मोपहारितः ॥

“भगवान् ने अपनी कौस्तुभ मणि को सर्प के सरोवर में प्रविष्ट करा दिया था और फिर कालिय की पत्नियों से उसे स्वयं को अर्पित कराया था।” दूसरे शब्दों में, चूँकि भगवान् कृष्ण सामान्य व्यक्ति का सा आचरण करना चाहते थे अतएव उन्होंने दिव्य कौस्तुभ मणि को अदृश्य करके कालिय के कोष में प्रविष्ट करा दिया। तत्पश्चात् जब अनेक मणियों तथा आभूषणों से कालिय द्वारा पूजा करने का उचित समय आया तो भगवान् की दिव्य चालाकी से अनजान सर्प की पत्नियों ने वह कौस्तुभ मणि यह सोचकर कि यह उनके पास रखी एक सामान्य मणि है भगवान् को भेंट कर दी।

आचार्य ने यह भी टीका की है कि भगवान् कृष्ण को *गरुडध्वज* (वे जिनकी पताका उनके वाहन गरुड के निशान से अंकित है) इसलिए कहा गया है कि कालिय भी कृष्ण का वाहन बनना चाह रहा था। गरुड तथा सर्पगण मूलतः भाई भाई हैं अतः कालिय कृष्ण को यह बतलाना चाह रहा था “यदि आप कहीं दूर जाना चाहें तो मुझे भी अपना निजी वाहन मानें। मैं आपके दास का दास हूँ और पलक झपकते ही मैं करोड़ों योजन की यात्रा कर सकता हूँ।” इस तरह पुराणों में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण अपनी शाश्वत लीलाओं के चक्र में, जब कंस उन्हें मथुरा आने का आदेश देते हैं, तो वे कभी कभी कालिय पर सवार होकर जाते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “कृष्ण द्वारा कालिय नाग को प्रताड़ना” नामक सोलहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।